

देव, खंड, कापालिक, तारानाथ इत्यादि योगसिद्धि पायकर योगाचार्य हैं. योगहीके प्रभावसे महासिद्ध अखंडऐश्वर्यवान् होकर मृत्युको जीत ब्रह्मानंदमें मग्न रह ब्रह्मांडमें विचरतेहैं. इनमेंसे मुख्य मत्स्येंद्रनाथ गोरक्षनाथ योगविद्याके आचार्य भये. गोरक्षनाथ मुमुक्षुजनोंके उपकारार्थ राजयोग, हठयोग आदि बहुविस्तार एवं बहुसाधनासाध्य जानकर, "यह गोरक्ष-पद्धति" नामा ग्रंथ २०० श्लोकमें सर्वसमुच्चय सारभूत प्रकटकिया सर्वसाधारणके सुबोधार्थ यहीधरशर्मा राजधानी दीहरी जिला गढ़वालनिवासीने इसका भाषानुवाद करके प्रकाशितकिया.

इसग्रंथके प्रथम मंगलाचारणसे (५) श्लोकमें विषयप्रयोजन संबंध अधिकारी कहेहैं. (१) में योगाभ्यासका फल, (१) में पडंगके नाम, (५) में आसन, (१२) में पट्टचक्रनिरूपण, (८) में दशनाडी स्थानोंसहित, (१४) में दशबाहु, (१०) में शक्तिचालन, (२६) में महामुद्राआदि, (७) में प्रणवाभ्यास, प्राणायामप्रशंसा, (४) में प्राणायामका प्रकार, (८) में नाडीशोधन, इतने विषय पूर्वशतकमें. तथा (२१) में प्राणायामका विस्तार, (३०) में प्रत्याहारविधि, (९) में धारणा, (२४) में ध्यान, (१३) में समाधि, (४) में मुक्तिसोपान, योगशास्त्राभ्यासका फल, इतने विषय उत्तरशतकमें कहेहै. ऐसी यह गोरक्षपद्धति योगमार्ग जाननेवालोंको अतिउत्तम तथा सुगम है. योगमार्गका प्रयोजन सभी

शास्त्रोंमें पड़ता है. विशेषतः संध्या, पूजनआदि द्विजन्माओंके नित्यकर्मभी विना इसके सिद्ध नहीं होते जैसे संध्यामें प्रथम “ वद्धपद्मासनो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ” तथा पूजनमें “ स्नातः शुचिः प्राङ्मुखोऽपविश्य प्राणानायम्य ” इत्यादि सर्वत्र विधिवचन है. यदि योग न जाने तो प्राणायाम पद्मासनआदि कहांसे जाने. इनके न जाननेसे समस्त संध्यावन्दनादिसाधन निरर्थक है. इससमयमें बहुधा लोग नाकपर हाथ लगानेको प्राणायाम समझते हैं. पद्मासनादियोंका तो नामभी नहीं है. तब कहांसे सिद्धि होवै इसीहेतु नास्तिकलोग असिद्ध तथा पोप (ठग) आदि निन्द्यशब्दोंसे अपने मुखविवरोंको दूषित करते हैं यदि योगाभ्यास करें तो सिद्धि प्रत्यक्ष होकर अपना उद्धार हो तथा दुष्टकोंके उन विवरोंमें मिट्टी पड़े. और योगग्रंथ बहुत तथा कठिन हैं. ये २ शतक थोड़ेहीमें ज्ञान देते हैं इसहेतु मैंने भाषा-टीका किया है कि सभीसज्जन इसे देख थोड़ाही गुरुपदिष्ट होकर सर्वार्थसाधनयोगमार्गकी महिमा जान जायेंगे. पाठकोंके सुबोधार्थ मैंने अनेकप्रसिद्ध योगग्रंथोंसे इसे बठाकर गोरक्षपद्धति कर दिया. और यह ग्रंथ “ लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर ” छापखानेके अधिकारी-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीको सर्वहक्कसहित दे दिया है जो यह उन्होंने आपके छापखानेमें छपाकर प्रसिद्ध किया है.

सही-

पंडित-महीधरशर्मा,

जिला-गढ़वाल, राजधानी-दीहरी

जाहिरात

संस्कृतादि पुस्तकप्रकाशक—“लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर ” नाम मुद्रायन्त्रमें संस्कृत भाषाटीकासहित अनेकानेक ग्रन्थ जैसे वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य, छन्द, नीति, चम्पू, नाटक, स्तोत्र, वैद्यक, स्मृति, कोष, इतिहास, श्रीरामानुज-साम्प्रदायी तथा हिन्दीभाषाके सब रकम ग्रन्थ सर्वकाल बिकनेको तय्यार रहतेहैं जो अन्यत्र नहीं मिलसके. खुलापत्राकार तथा किताबों सपुष्ट रेशमी बिलायती चित्रित जिल्द बधीहैं पुस्तकोंकी रचना और शुद्धता इसछापेकी उत्तम है कि, देखनेसे चित्त प्रसन्न होजाय. जिनका दूसरा बड़ा सूचीपत्र है. (आध आनेका टिकट भेजनेसे शीघ्र रवाना होताहै)

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना.
कल्याण—(मुंबई)

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

भाषानुवादसहिता-

गोरक्षपद्धतिः

श्रीआदिनाथं स्वगुरुं हरिं मुनिं
गोरक्षशास्त्रस्य प्रणम्य योगिनम् ।
भाषाविवृतिं कुरुते महीधरो
योगे सुबोधः खलु जायते यया ॥ १ ॥

श्री (आदिनाथ) शिवजी, तथा निजगुरु, हरिमुनि
योगीको प्रणाम करके महीधरनामा गोरक्षयोगशास्त्र जो यो-
गोद्गोरक्षनाथने दोशतकमें शिष्योपकारार्थ बनायाहै, उसकी
भाषाटीका करताहै, जिसेसे योगमार्गमें सभीको सुगमतासे बो-
ध होताहै. योगपदका अर्थ मेल है जैसे 'ह' का अर्थ सूर्य
' ठ ' का चंद्रमा है इनके (योग) मेलको (हठयोग) कह-
तेहै. इसीको राजयोगभी कहतेहैं, प्राण, अपानवायु जिनकी
सूर्यचंद्रमा संज्ञा है, इनका ऐक्य करनेवाला जो प्राणायाम
उसे हठयोग कहतेहैं ॥ १ ॥

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम् ।

यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥ २ ॥

शिष्यको आत्माके तत्त्वबोधनिमित्त गुरुस्वरूप धारणकर परमगुरु श्रीपरमात्माको सहस्रदलकमलमें भावनापूर्वक प्रथम ग्रंथारंभमें विघ्नविघातार्थ प्रणाम करतेहैं, कि जीवब्रह्मकी ऐक्यता योगशास्त्रका प्रयोजन है. गुरुके समीप भक्तिपूर्वक रहनेसे शिष्यका पांचभौतिक शरीरभी आनंदमय होजाताहै. आनंदही परब्रह्मका रूप है जैसे श्रुतिभी कहताहै कि "आनन्दो ब्रह्मणो रूपम्" यदि ऐसा न हो तो उसकी पैछानभी नहींहोसके क्योंकि "न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा" इत्यादि गीता । एवं वेदांतग्रंथोंमें लिखाहै कि उसका रूप तथा जन्म, मरण, मध्य ओर रंग चिह्न मूर्तिआदि कुछ नहींहै. केवल आनंदमय स्वयंप्रकाशमान है. तथा, निर्विकल्प आनंदमय होजानेकोही मुक्ति कहतेहैं. ऐसे परमआनंदस्वरूप परब्रह्मको (जिसका शरीरभी आनंदही है) वदना करके ग्रंथारंभ करतेहैं जिसके सानिध्य (सम्मुख) होनेसे, अर्थात् (केवला-नुभवानंद) वह आनंदात्मा परमात्मा केवल मनके मनन अनुभव विचार करनेसे अपनेही बीच पायाजाताहै. न कि इतरतः तीर्थयात्रादि फिरनेसे, यह अनुभव केवल योगहीसे साध्य है. यह ज्ञानकी प्रथम भूमिका है. नाडीशोधन, वायुशोधन, ध्यान धारणा आदिविना एवं गुरुरुपादिना नहींमिलता. विना ज्ञानके मुक्ति नहींमिलती श्रुतिभी कहताहै कि "ऋते ज्ञानात् मुक्तिः" मुक्तिपदार्थ वही आनंदमय होजाताहै. योगसे ज्ञान पापके जीवपरमात्माका एकभाव होनेमें वह आनंदस्वरूप पर-

ब्रह्म साक्षात्कार होता है इस ज्ञानगम्यके प्रत्यक्षमात्र होनेहसे परमविदानंदमय आपही योगी होजाता है। जैसे ज्ञानकी सात भूमिका हैं, ज्ञानभूमि १ विचारणा २ तनुमानसा ३ सत्त्वापत्ति ४ संसक्तिनामिका ५ पदार्थाभाविनी ६ तुर्यगा ७ ये सात हैं। विवेक वैराग्य हैं प्रथम जिसमें ऐसी तीव्र मुमुक्षारूप पहिली, श्रवणमननरूपा दूसरी, मनमें अनेकअर्थ संकल्प विकल्प उत्पन्न तथा नाश होते हैं, इन सभीको छोड़के, (सत्) एकार्थमें वृत्ति होनी, (तनुमानसा) तीसरी, ये तीन साधनभूमि हैं इनसे जब अंतःकरण शुद्ध हो तब "अहं ब्रह्मास्मि " में ब्रह्म हूं ऐसा योगी कहाता है, समस्त साधन पूजनजपादिकमें " अहं ब्रह्मास्मीति चिरं भावयेत् " लिखा है, यह भावनाविना उक्त तीन भूमिका साधे होतेही नहीं हैं इसलिये विना मार्गके कुछभी साधन नहीं होता है चौथी, सत्त्वापत्ति ज्ञानभूमि यही फलभूमि है इसमें जब योगी प्राप्त होवै तब ब्रह्मवित् कहाता है, इसी सत्त्वापत्तिभूमिमें समीपही उही जो सिद्धि उसमें आसक्त न होना, इसे असंसक्तिनाम पांचवी ज्ञानभूमि कहते हैं, इसमें जब योगी प्राप्त होवै तो उसे ब्रह्मविद्वर कहते हैं, जिसमें परब्रह्मसे व्यतिरिक्त अर्थको भावना न करे वह परार्थभाविनी छठी ज्ञानभूमि है इसमें जब योगी प्राप्त होना है तो वह दूसरेके बोधन करनेसे मात्र प्रबुद्ध होता है, नहीं तो एकाग्रगुण्याकारही रहता है उसे ब्रह्मविद्वरीयान् कहते हैं, तुर्यगा नाम सातवी भूमि है इसमें योगी प्राप्त होनेसे ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहते हैं, इतने साधनाओंसे स्वात्माराम

(४)

गोरक्षपद्धति-

चिदानन्द, परमानन्द, चिन्मय, आदियोगी आपही होजाताहै. कालरहित होताहै. “ अन्तनिश्चलितात्मदीपकलिकास्वाधारबन्धादिभिर्यो योगी युगकल्पकालकलनात्तत्त्वं च जेगीयते । ज्ञानामोदमहोदधिः समभवद्यत्रादिनाथः स्वयं व्यक्ताव्यक्तगुणाधिकं तमनिशं श्रीमीननाथं भजे ” जो मीननाथयोगीश्वर मूलाधारबंध, उड्डीयानबंध, जालंधरबंध, आदि योगाभ्याससे हृदयकमलमें निश्चलदीपककी ज्योतिसरीखी परमात्माकी कला साक्षात्कार करके श्वासा, पला, घटी, प्रहर, दिन, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प, आदि, निरन्तर पुनः पुनः फिरनेवाला है स्वरूप जिसका ऐसे कालको, तथा जलादि २५ तत्त्वोंको पहिचानके योगाभ्याससे जीतताहै तथा ज्ञानानन्दरूपी समुद्र होकर गुप्तप्रकट अर्थात् सगुण निर्गुण होनेकी सामर्थ्य रखनेवाला (आदिनाथ) शिवस्वरूपकी भावना नित्यकरनेके अभ्याससे, आपही साक्षात् शिव होगयाहै. ऐसे योगीश्वर श्रीमीननाथको दिनरात नमस्काररूप सेवन करताहूं ॥ २ ॥

नमस्कृत्य गुरुं भक्त्या गोरक्षो ज्ञानसुत्तमम् ।

अभीष्टं योगिनां व्रूते परमानन्दकारकम् ॥ ३ ॥

योगी गोरक्षनाथ भक्तिपूर्वक गुरुको प्रणाम करके पूर्वजन्मके योगसेवनसे इस जन्ममें पूर्णयोगमार्गका बोध देनेवाला योगशास्त्र कहतहैं. जिससे योगियोंको ‘ अभीष्ट ’ मनोवांछित मिलताहै तथा परमयोगानन्द यद्वा ब्रह्मानन्द होताहै. कर्म और भक्तिसे

जब चित्त शुद्ध होवै तब योगशास्त्रमें अधिकारी होताहै ॥ ३ ॥

गोरक्षसंहितां वक्ति योगिनां हितकाम्यया ।

ध्रुवं यस्यावबोधेन जायते परमं पदम् ॥ ४ ॥

योगिजनोंके हितकेलिये योगीन्द्र गोरक्षनाथ गोरक्षसंहिता
योगशास्त्र कहताहै, जिसका बोध होनेसे योगीको (परमपद)
निजनोंके होताहै यद्वा वह मिलताहै जिसमें पहुँचकर पुन-
श्चमन करताहै, हटिआना नहींहोता ॥ ४ ॥

आसनं प्रतिसोपानमेतत्कालस्य वञ्चनम् ।

ध्यानं सम॥ मनो भोगादासक्तं परमात्मनि ॥ ५ ॥

तसे मन विषयभोगोंसे हटजानेकर परमात्मा
(ईश्वर) में, आसक्त होजावै तब योगी काल तथा मृत्युको
जीतकर (जरा) बुढ़ापा (मृत्यु) मरणको जीतताहै. मुक्तिके
(सोपान) सीढ़ी यही कर्म है. और कालकी वंचनाभी यही है ॥ ५ ॥

द्विजसेवितशास्त्रस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम् ।

शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥ ६ ॥

सज्जनको संवोधन करके, गोरक्षनाथ कहतेहैं कि, हे सत्तमाः !
श्रेष्ठजनों ! वेदरूपी कल्पवृक्षके फल इसयोगशास्त्रका सेवन करो
स्त्रिमके (शारदा) टैनिपां योगिरूपी (द्विज) पत्ति अथवा मु-
चलदृष्टि सेविन हैं और संसारके तीन प्रकारके (ताप) क्लेशोंको
र) दूरबाजेहैं ॥ ६ ॥

सम्प्राप्तहै. यद्वा गणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।

लकर मोक्षमार्गधरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट् ॥ ७ ॥

प्रथम आसन सिद्धकरके क्रमशः प्राणायाम, प्रत्याहार,
धारणा, ध्यान, समाधिका अभ्यास करना ये योगके छः अंग हैं
 इनके पृथक् विस्तार आगे कहेंगे. यमनियमसंपन्न योगीको
 क्रमपूर्वक अभ्यासकरके समाधिका लाभ होता है जिससे निर्वि-
 कल्प समाधिसे राजयोग सिद्ध होता है. तद चिदानंदस्वरूप आप
 ही होके योगानंदको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

॥ अथासनानि ॥

आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः ।

एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति महेश्वरः ॥ ८ ॥

आसनोंका विस्तार कहते हैं कि, जितने जीवमात्र अर्थात्
 चौराशीलक्ष योनि हैं इतनेही आसनभी उन्हींके शरीरचेष्टानु-
 सार हैं इनके प्रत्येकभेदोंके जाननेहारे केवल शिवजी मात्र हैं
 और कोई नहीं जानता ॥ ८ ॥

चतुराशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् ।

ततः शिवेन पीठानां षोडशानां शतं कृतम् ॥ ९ ॥

चौराशीलक्ष आसनोंके भेद मनुष्योंसे नजानेजायगे इसप्र-
 कार करुणामय शिवजीने सर्वसाधारणके उपकारहेतु चौराशी
 (८४) मात्र आसन योगशास्त्रमें प्रगटकिये. यही सूत्रजन्म-
 हैं ॥ ९ ॥

ऐवाला योग-

आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतं वाञ्छितं मिल-
 एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलार्चन और भक्तिसे

इन ८४ आसनोंमेंजी बहुतविस्तार होनेसे योगधारण करनेवालोंके उपकारहेतु दोही आसन मुख्य कहेहैं। इससे इसग्रंथमें सुगमताकेलिये सर्वसंमत एक सिद्धासन दूसरा पद्मासन सविस्तार कहाजाताहै ॥ १० ॥

योनिस्थानकमङ्गुलिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियो चलदृशा पर्येदुवारन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥११॥

सर्वोत्कृष्ट दो आसनोंमेंसे प्रथम सिद्धासनकी विधि कहतेहैं कि, गुदा और लिंगके बीचमें योनि (कुंडलिनीका) स्थान है, इसको वामपादके एडीसे दृढ पीडन (दबाव) करे दाहिने पैर-के एडी लिंगके ऊपर लगाकर दबाये दोनहूँ पैरोंकी एडियां नीचे ऊपर बराबर होजातीहैं तथा दोनहूँ पैरोंके अंगुष्ठ जंघा और गुल्फोंके बीच नीचे छिपजातेहैं इनके दबावसे योनिस्थानके तले ऊपरके दो इंद्रिय गुदा, उपस्थ रुकजातेहैं, तदनंतर हृदयके चार अंगुल ऊपर (चिबुक) ढोड़ी स्थिरकरे और समस्तइंद्रियोंसे हटाकर एकाग्रचित्त करे तथा दोनहूँ नेत्रोंसे अचलदृष्टि कर (भ्रुकुटि) मध्य देखतारहे यह मोक्षरूपी (द्वार) दरवाजे (कपाट) के किवाड़ोंके खोलकर मोक्षमार्ग दिखाताहै, यदा जो कुंडलीमें रुकाहुवा सुषुम्णाद्वार उसे खोलकर मोक्षमार्ग (सुषुम्णा) के द्वारा मोक्षस्थान सहस्रदलक-

(८)

गोरक्षपद्धति-

मलकर्णिकांतर्गत परमात्मामें पहुँचानेका यज्ञ करताहै यह सिद्धासन है ॥ ११ ॥

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकग्रासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥१२॥

बाय (ऊरु) जानुमूलमें दाहिना पैर उत्तानकरके तथा
दक्षिण (ऊरु) जानुमूले वामपाद वैसेही स्थापनकरके दाहिने
हाथको पीठपीछे घुमायके दाहिने पैरके अँगुठेको ग्रहणकरे त-
था बायें हाथको पीठपीछे घुमायके दाहिने हाथ ऊपरसे
लेजायकर बायें पैरके अँगुठको ग्रहण करे. तब (चिबुक) ढो-
ढीकों छातिस लगाय, दोनहू नेत्रसे नासिकाका अग्रभाग निरं-
तर देखतारहै. यह योगिषोंके समस्त रोगविकार नाश करनेवा-
ला बद्धपद्मासन है ॥ १२ ॥

‘प्रकारांतरसेभी पद्मासन कहाहै इसलिये मैं ग्रंथांतरमतसँ
मत्स्येन्द्रनाथके मतकाभी लिखताहूँ’-

“ उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशी ॥ १ ॥
नासाग्रे विन्यसेद्राजदन्तमूले तु जिह्वया ।
उत्तम्य चिबुकं वक्षस्युत्थाप्य पवनं शनैः ॥ २ ॥
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते बुधैः ” ॥ ३ ॥

(ऊरु) जानुमूलमें पूर्वाक्तप्रकारसे चरण (जैसे दक्षिण-ऊरुमें वाम, वाममें दक्षिणचरण, उचान अर्थात्, पैरोंके पीठ जानुपर लगी रहें) स्थापन करके दोनहूँ हात सीधे एडियोंके ऊपर नीचे वामऊपर दक्षिणहस्त रखके दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर निश्चल रखे तदनंतर (राजदंत) जाढ़ोंके मूल दक्षिणवाम दोनहूँमें जिह्वाकर ऊर्ध्वस्तंभन करे (यह जिह्वाबंध गुरुमुखसे जानना चाहिये) (जिह्वाबंध मूलबंधका विस्तार ५७ । ५८ श्लोकमें कहेंगे) तथा (चिबुक) ढोड़िको चार अंगुल अंतर छोड़कर छातिसे लगाय मंदमंदवायुको उठावै, यह मूलबंध है, (यह भी गुरुमुखबोध्य है) यह पद्मासन मत्स्येन्द्रनाथके मतका है, संपूर्ण-रोगोंको नष्ट करता है, जो संसारमें भाग्यहीन हैं उनको दुर्लभ है, बुद्धिमान् एवं पुण्यवान् पुरुषोंको गुरुरूपासे मिलता है । १ । २ । ३ ॥

॥ अथ षट्चक्रनिरूपणम् ॥

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।

स्वेदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः ॥ १ ॥

.विषमवासनासे मन चंचल रहता है रोकेसे रुकता नहीं बिना मन रोके योगसिद्धि नहीं होती, मन रोकनेकेलिये कुछ निमित्त (अवलंबन) अवश्य होना चाहिये, इसहेतु छःचक्र, सोलह आधार, दो लक्ष्य, पांच आकाश, ये चार प्रकारभेद (सर्वउन्नीत) कहते हैं, कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा ये छःचक्र हैं इनका विस्तार आगे कहेंगे आधार

सोलह हैं इनके विशेषविस्तार अतिगुह्य होनेसे श्रीगोरक्षनाथने यहां प्रगट नहीं कहे और इनके प्रकटताविना सर्वसाधारणको बोध होना असंभव है इसलिये जैसा गुरुरूपासे जाना, यहां ग्रंथांतरीयमतसे प्रकटकरताहूं. प्रथम आधार पादांगुष्ठ है इसपर एकाग्रदृष्टि करके ज्योतिर्चैतन्य करै इससे दृष्टि स्थिर होती है १ दूसरा आधार मूलाधार. इसे पावोंकी एडिसे अचेतन करना इससे अग्निदीप्त होती है २ तीसरा गुह्याधार. इसके संकोचविकाशके अभ्यास करनेसे अपना वायु फिरके वज्रगर्भनाडीमें प्रवेश कर बिंदुचक्रमें जाता है इससे शुक्रस्तंभन एवं (वज्रोली) रेत योनिमें पात न करके पुनः आकोचनक्रमसे वज्रनाडीद्वारा बिंदुस्थानमें प्राप्त करनेकी सामर्थ्य होती है ३ ४ पंचम उड्डीयानबंध आधार है. पश्चिमतान आसन बांधके गुदाको संकोचन करे इससे मल मूत्र कृमिका नाश होता है ५ छठा नाभिमंडलाधार. जिसमें चैतन्य ज्योतिःस्वरूपका ध्यान करनेसे एवं प्रणवके जपसे नाद उत्पन्न होता है ६ सातवां हृदयाधार. इसमें प्राणवायुको रोध करनेसे हृदयकमल विकसित होता है ७ आठवां कंठाधार. इसमें ढोडी हृदयपर दृढ़ लगायके ध्यान करे तो इडा-पिंगलामें बहताहुआ वायु स्थिर होता है ८ नवम क्षुद्रमंरिकारधार. कंठपूत है इसमें ऊपरसे जो दो लिंगाकार ऊपरसे लटकता है उन जिह्वा पोंछावे तो ब्रह्मरंध्रमें चंद्रमंडलसे बहनाहुआ अमृतगुप्त मिलता है ९ दशम जिह्वामूलाधार. इसमें सेचरीमुद्राके प्रकारसे जिह्वासे मथन करे, तो सेचरीसिद्धि होती है १० ग्यारहवां जिह्वाका अधोमा-

गाधार, जिसमें जिह्वाग्रसे मथनकरके दिव्यकविताशक्ति होतीहै
 ११ बारहवां ऊर्ध्वदंत मूलाधार, जिसमें जिह्वाग्रस्थापनके
 अभ्याससे रोगशांति होतीहै १२ तेरहवां नाशिकाग्राधार,
 जिसमें दृष्टि स्थिरकरनेसे मन स्थिर होताहै १३ चौदहवां
 नासिकामूलाधार, जिसमें दृष्टि स्थिर करनेसे छः महीनेके
 निरंतर अभ्यासकरके ज्योति प्रत्यक्ष होतीहै १४ पंद्र-
 हवां भ्रूमध्याधार, जिसमें दृष्टि अचलदृष्टिके अभ्यासकरके
 सूर्यकिरणोंके समान ज्योति प्रकाश होतीहै इसी अभ्यासके दृढ
 होनेपर सूर्याकाशमें मनका लय होताहै १५ सोलहवां नेत्रा-
 धार, जिनके मूलमें अंगुलिसे भीच तैमें बर्तुलाकार बिंदुसमान
 इंद्रधनुषके समान रंगकी ज्योति है इसज्योतिके देखनेका अभ्या-
 सकरके ज्योति प्रत्यक्ष होतीहै १६ ये सोलह आधार हैं, अथ-
 वा मूलाधार १ स्वाधिष्ठान २ मणिपूर ३ अनाहत ४ विशुद्ध ५
 आह्लाचक्र ६ बिंदु ७ अर्द्धेन्दु ८ रोधिनी ९ नाद १० नादांत
 ११ शक्ति १२ व्यापिका १३ समनी १४ रोधिनी १५ ध्रुवमं-
 डल १६ ये सोलह (१६) आधार हैं ब्रह्म तथा अपनेमें अभेद
 समझकर भावना करनेसे सिद्धि होतीहै अब (दो) लक्ष्य कहतेहैं
 ये दो प्रकार ब्रह्म आन्तरिक हैं देखनेके उपयोगी नासिका
 तथा भ्रूमध्ये इत्यादि बाह्यलक्ष्य हैं मूलाधारचक्र, तृदयक-
 मल इत्यादि आन्तरिकलक्ष्य हैं, अथ पांच आकाश इसप्रकार
 है कि प्रथम श्वेतवर्ण ज्योतिरूप आकाश है इसके भीतर रक्त-
 वर्ण ज्योतिरूप प्रकाश है इसके भीतर धूम्रवर्ण ज्योतिरूप महा-

(१२)

गोरक्षपद्धति-

काश है इसके भीतर नीलवर्ण ज्योतिस्वरूप तत्त्वाकाश है इसके भीतर (विद्युत्) त्रिजुलीके वर्णका ज्योतिस्वरूप सूर्याकाश है ये पांच आकाश हैं इतने ६ चक्र १६ आधार २ लक्ष्य ५ आकाश शरीरमें हैं इन्हे जो योगी नहीं पहचानता उसको योगसिद्धि नहीं होती ॥ १३ ॥

एकस्तम्भं नवद्वारं गृहं पञ्चाधिदैवतम् ।

स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥१४॥

शरीरस्तंभरूपी गृह है इसमें सकलवासनाओंका आश्रय मन है यही स्वरूप होकर समस्तशरीरको थामे रहता है जिसके मुख १ नेत्र २ नासिका २ कर्ण २ गुह्य १ लिंग १ ये ९ द्वार हैं तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पंचतत्त्वोंके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, अधिदेवता हैं ऐसे शरीररूपी गृहको जो योगाभ्यासी नहीं जानता वह योगसिद्धि कैसे पाय सकता है ॥ १४ ॥

चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च पद्मदलम् ।

नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यादलं हृदि ॥ १५ ॥

कण्ठे स्यात् षोडशदलं मृमध्ये द्विदलं तथा ।

सहस्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ॥ १६ ॥

पट्चक्रोंके पृथक् वर्णन है कि प्रथम मूलाधारचक्र गुदद्वारमें पीले वर्णका अधोमुख कमल है जिसे ४ दलमें व, श, ष, स, बीज शोभिनें आठों दिशामें आठ श्लोसे वक्षित पीतवर्ण मध्ये कर्णिकामें चतुष्कोण

हार्थिके ऊपर आरुद्र

जिसके (पार्श्व) बगलमें लं बीज है और चार हाथ चार मुखका ब्रह्मा कोटिसूर्यसमान प्रकाशमान एवं ढाकिनीशक्तिसे युक्त है वहीं देदीप्यमान त्रिकोणाकार कामाख्या पीठ है तिसके मध्यमें पश्चिममुख स्वयंभू लिंग है उसके बीचमें विजुली समान चमकवाली सादेतीन फेरे (वृत्त) से वेष्टित होकर, सुपुष्पाके द्वारको रोकके सोयाहुआ सर्प जैसा कुण्डलिनी महाशक्ति है जैसे पृथ्वीआधार शेष तैसेही शरीरका आधार यह है बिना इसके जागे और उपाय योगके व्यर्थ है. इसलिये प्रथम इसका बोधन करना मुख्य है १ दूसरा स्वाधिष्ठानचक्र. लिंगमूलमें रक्तवर्ण ऊर्ध्वमुख षड्दल व, भ, म, य, र, ल, इन ६ वर्णसे शोभित कमल है शुक्रवर्णकर्णिकामें अर्द्धचंद्राकार जलमंडल है इसके बीचमें (वं) बीज है जिसके (पार्श्व) बगलमें श्रीवत्सकौस्तुभ-पीतांबर-वनमालाओंसे शोभित चतुर्भुज विष्णु शाकिनीशक्तिसहित हैं २ तीसरा मणिपूरचक्र. नाभिमूलमें नीलवर्ण ऊर्ध्वमुख दशदलकमल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, इन १० वर्णोंसे शोभित है मध्यकर्णिकामें स्वस्तिकाकार तेजोमंडल है. इसके मध्यमें सूर्यके समान तेजधारी भेषवाहन (रं) बीज चतुर्भुज है इसके पार्श्वमें रक्तवर्ण विभूतिभूषित, नीलवर्ण, चतुर्भुज लाकिनीशक्तिसहित महारुद्र हैं ३ चौथा अनाहतचक्र. हृदयमें द्वादशदलकमल ऊर्ध्वमुख क, ख, ग, घ ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन १२ बीजोंसे शोभित है उसके कर्णिकामें धूम्रवर्ण, 'द्रकोण बायुमंडलके मध्यमें धूम्रवर्ण, चतुर्बाहु, रुष्णमृगवाहन

यं) बीज है. इसके पार्श्वमें अक्षयमुद्रा धारणकरके कांकिनीशक्तिसहित ईश्वर हैं कर्णिकाके त्रिकोणमें सुवर्णवर्णबाण-लिंग है यह पूर्णागिरि पीठ कहाताहै ४ पांचवां विशुद्धचक्र. कंठ-स्थानमें रक्तवर्ण, ऊर्ध्वमुख, पौडशदलकमल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, इन १६ वर्णोंसे शोभित है स्फटिकवर्णकर्णिकामें वर्तुलाकार आकाशमंडल जिसमें निष्कलंक पूर्णचंद्रमा है इसके मध्यमें श्वेतहाथी घाहन, पाश, अक्षय, वर, अंकुश, धारणकरता आकाश बीज (हं) इसके पार्श्वमें शाकिनीशक्तिसहित सदाशिव हैं यह जालंधरपीठ कहाताहै ५ छठा आज्ञाचक्र. भूमध्यमें श्वेतवर्ण ऊर्ध्वमुख द्विदल ह, क्ष, इन २ बीजोंसे शोभित कमल है इसके कर्णिकामें हाकिनीशक्तिसहित शिव है कर्णिकाके त्रिकोणमें, (इतरलिंग) नामा शिवलिंग है. यही मनका स्थान है उड्डीयानपीठभी इसीको कहतेहै ६ इसके ऊपर सहस्रदलकमल ब्रह्मरंध्रमें श्वेतवर्ण पूर्णचंद्रसमान मुख परमानंदस्वरूप ह, ल, क्ष इन ३ वर्णोंसे शोभित है त्रिकोणकर्णिकामें पूर्णचंद्रमंडल जिसके मध्यमें धिजुलीके समान चमकोला परमानंदरूप देदीप्यमान ज्योति है इसमें चिदानंदस्वरूप परमशिव विराजमान हैं इनके पार्श्वमें सहस्रसूर्यके समान तेजधारी प्रबोधस्वरूप अर्द्धचंद्राकार निर्वाणकला विराजमान है. इसके बीचमें कोटिसूर्यसमान तेजधारी रोमसमान मूक्षम निर्वाणशक्ति विराजमान है इनके मध्यमें मन तथा वचनसे अगम्य केवल योगसे गम्य चिदानंदस्वरूपसे पर क्या

अतिपरं परमशिवपद है जिसको परब्रह्मपद कहतेहैं विराजमान हैं जिसके निमिषोन्मिष अर्थात् पलक खेलने भीचनेमें सृष्टि उत्पन्न और नष्ट होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।

योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ॥ १७ ॥

पहिला मूलाधार स्वाधिष्ठान इन दो चक्रोंके बीचमें योनि-स्थान है यही कामरूप पीठ है. अर्थात् मूलाधारके कर्णिकामें कामरूप पीठ है ॥ १७ ॥

आधाराख्ये गुदस्थाने पङ्कजं च चतुर्दलम् ।

तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता ॥ १८ ॥

मूलाधार (गुदा) में जो चतुर्दलकमल विख्यात है उसके मध्यमें त्रिकोणाकार योनि है जिसकी वंदना समस्तसिद्धजन करतेहैं पंचाशत् वर्षसे बनीहुई कामाख्या पीठ कहाताहै ॥ १८ ॥

योनिमध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखस्थितम् ।

मस्तके मणिवद्विम्बं यो जानाति स योगवित् ॥ १९ ॥

पूर्वोक्त त्रिकोणाकारयोनिमें सुषुम्णाद्वारके समुख स्वयंभू नाम करके जो महालिङ्ग है उसके शिरमें मणिकेसमान देदी-प्यमान बिंब है यही कुंडलिनी जीवाधार शरीराधार मोक्षद्वार है इसे जो सम्यक् प्रकारसे जानताहै. उसे योगवित् कहतेहैं १९

तप्तचार्माकराभासं तडिलेखेव विस्फुरत् ।

त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरघो मेघात्प्रतिष्ठितम् ॥ २० ॥

(भेद) लिङ्गस्थानसे नीचे मूलाधारकर्णिकामें रहता तपा-

हुआ सुवर्णके समान वर्ण, एवं बिजुलीके समान चमकदमकवा-
ला जो त्रिकोण है वही कालाग्रिका स्थान है ॥ २० ॥

यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।

तस्मिन् दृष्टे महायोगे यातायातान्न विन्दते ॥ २१ ॥

इसी त्रिकोणविषय समाधिमें अनन्त (विश्व) संसारमें
व्याप्त होनेवाली परमज्योति प्रकट होती है वही कालाग्रिका रूप है
जब योगी ध्यान, धारणा, समाधिकरके उक्त ज्योतिको देखने
लगताहो तो उसको जन्ममरण नहींहान्ते अर्थात् अजरामर
हो जाता है ॥ २१ ॥

स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः ।

स्वाधिष्ठानाश्रयादस्मान्मेढ्रमेवाभिधीयते ॥ २२ ॥

स्वशब्द (प्राण) इसका बोधक है इसका आश्रय
(स्वाधिष्ठान) लिङ्गमूल है प्राणका अधिष्ठान होनेसे इसेही
मेढ्र कहा जाता है ॥ २२ ॥

तन्तुना मणिवत्प्रोतो यत्र कन्दः सुषुम्णया ।

तन्नाभिमण्डलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् ॥ २३ ॥

नाभिमें एक कंद है, जिसे सर्वांगव्यापिनी (सिरा) नसें नि-
कली हैं जैसे १० नसें उपरकी हैं जो शब्द, रस, गंध, श्वास
जुंभा, शुद्धा, तृप्ता, ठकार, नेत्रदृष्टि, (धारणा) मगजशक्ति
इन दश कामोंको अपने २ स्थानोंमें दीपन करती हैं तथा १०
नसें नीचेकी हैं वात, मूत्र, मल, शुक्र, अन्न, पान, रसको
नीचे पहुँचाना इनका काम है और चार जिनकी तिछीं गति है.

(दो)-दाहिने बगल (दो) बायें बगल होकर अगणित सूक्ष्मशाखा वनके सर्वांगमें जालके नाई रोमरोम प्रति पूरितहैं उनहींके मुखोंसें प्रस्रव देहके बाहर रोमोंमें होके आताहै। तथा उन्हींके मार्गोंसें लेप, मर्दनादि पदार्थ भीतर प्रवेश करतेहैं। इसप्रकारका नाभिकंद जैसे सूत्रमें मणि पिरोया रहताहै ऐसेही सुषुम्णानाडीमें पिरोयाहै इसे मणिपूरचक्र, नाभिमण्डलमें कहतेहैं ॥ २३ ॥

द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपापविवर्जिते ।

तावजीवो भ्रमत्येव यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥२४॥

हृदयमें द्वादशदल अनाहत चक्र है जिसमें (तत्त्वातीत) सत्त्व-रज तमोगुणरहित जीव है गुणातीत होनेसे पुण्यपापसेभी रहित है परंतु जब तत्त्वकी पहिचान योगाभ्याससे होजावे तब ये गुण जीवमें आतेहै विना तत्त्वज्ञान जीव संसृतिमें भ्रमणही करता-रहताहै ॥ २४ ॥

॥ अथ दशनाडीवर्णनम् ॥

ऊर्ध्वं मेढादधो नाभेः कन्दो योनिः खगाण्डवत् ।

तत्र नाड्यः समुत्पन्ना सदस्राणां द्विसप्ततिः ॥ २५ ॥

लिंगमूलसे ऊपर नाभिते कुछ नीचे कंदके सदृश समस्तनाडियोंका (मूल) उत्पत्तिस्थान पक्षिके अंडकेसमान आकार है इससे बहतर ७२ हजार नाडी ऊपर नीचे निछें होकर सर्वांग व्याप्त हैं ॥ २५ ॥

तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः ।

प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दश स्मृताः॥२६॥

उक्त ७२ हजार नाडियोंमें मुख्य ७२ वहत्तरही हैं इनमेंसे (प्राणवाहिनी) वायुचलनेहारी प्रधान दशही नाडी हैं ॥२६॥

इडा च पिङ्गला चैव सुपुष्पा च तृतीयका ।

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी॥२७॥

अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ।

एतन्नाडीमयं चक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा॥ २८ ॥

इडा १ पिङ्गला २ सुपुष्पा ३ गान्धारी ४ हस्तिजिह्वा ५ पूषा ६ यशस्विनी ७ अलम्बुषा ८ कुहू ९ शङ्खिनी १० ये उक्त मुख्यनाडियोंके नाम हैं. यह नाडीमय चक्र योगाभ्यासीको अवश्य जाननायोग्य है तदनंतर इन नाडीयोंमें चलनेवाले वायुको जानना तब प्राणायामसे नाडीशोधन होताहै॥२७॥२८॥

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्थिता ।

सुपुष्पा मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥२९॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।

यशस्विनी वामकर्णे ह्यानने चाप्यलम्बुषा ॥ ३० ॥

नासिकाके वामभागमें इडा, दक्षिणभागमें पिङ्गला नाडी वहतीहै इनके मध्यमें सुपुष्पा नाडी रहतीहै इन तीनोंकी जड़ मूलाधारचक्रके कर्णिकाका त्रिकोण है. जिसके वामकोणसे इडा, दक्षिणकोणसे पिङ्गला और पश्चिमकोणसे सुपुष्पा नाडी उत्पन्न हुईहैं ये तीनों नाडी उक्तचक्रको अंकमाल कियेहैं अपने २ ओगके नासिकाछिद्रसे वहतीहै मध्य सुपुष्पा मूलाधारसे

ब्रह्मरूपार्थ है अन्य नाडी उक्तचक्रके कदसे उत्पन्न होकर प्रत्येक रंघ्रमें है जैसे वामनेत्रमें गांधारी, दक्षिण नेत्रमें हस्तिजिह्वा, दक्षिणकर्णमें पूषा, वामकर्णमें यशस्विनी, मुखमें अलंबुषा हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने च शङ्खिनी ।

एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडयः ॥ ३१ ॥

लिङ्गदेशमें कुहू, मूलस्थानमें शंखिनी ये दो उसकंदसे अधोमुख होकर नीचेको गईं और ऊर्ध्वमुख होकर ऊपरको हैं इसप्रकार ये दश नाडी प्राणवायुके एक एक मार्गमें आश्रय करके स्थित हैं ॥ ३१ ॥

इडापिङ्गलासुपुष्णाः प्राणमार्गे समाश्रिताः ।

सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ॥ ३२ ॥

चंद्रमा, सूर्य और अग्नि हैं देवता जिनके ऐसे इडा, पिंगला, सुपुष्णा ये तीन नाडी प्राणवायुके मार्ग हैं ॥ ३२ ॥

॥ अथ दश वायवः ॥

प्राणोपानसमानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ ३३ ॥

प्राण १ अपान २ समान ३ उदान ४ व्यान ५ नाग ६ कूर्म ७ कृकल ८ देवदत्त ९ धनंजय १० ये दश वायु शरीरमें हैं ॥ ३३ ॥

इति प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यतः ॥ ३४ ॥

व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानाः पञ्च वायवः ।

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ॥ ३५ ॥

प्राणवायु हृदयमें रहकर श्वास बाहर भीतर निकालता तथा अन्नपानादिकोंका परिपाक करताहै १ अपानवायु मूलाधारमें मलमूत्र बाहर निकालनेका काम करताहै २ समानवायु नाभिमें शरको (शुष्क) अर्थात् यथास्थान रखनेका काम करताहै ३ उदानवायु कंठमें रहकर शरीरकी वृद्धि करताहै ४ व्यानवायु सर्वशरीरमें लेना, छोड़नाआदि अंगधर्म कराताहै ५ वायु तो १० हैं परंतु इनमें प्रधान ये पांचहीं हैं शिवयोगशास्त्रके मतसे मुख, नासिका, हृदय, नाभिमें कुंडलिनीके चारों ओर तथा पादांगुष्ठमें सर्वदा प्राणवायु रहताहै १ गुह्य, लिंग, ऊरु, जानु, उदर, पेड़, कटि, नाभि इनमें अपानवायु रहताहै २ कर्ण, नेत्र, कंठ, नाक, मुख, कपोल, मणिवंधमें व्यानवायु रहताहै ३ सर्वसंधि तथा हात पैरोंमें उदानवायु रहताहै ४ उदराग्निके कलाको लेकर सर्वांगमें समानवायु रहताहै ५ इस कारणसे प्राणादि पांच वायु प्रधान हैं नागादिपांच वायुका कर्म जो चर्म एवं हड्डी रहकर करतेहैं आगे कहतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।

कृकरः क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ३६ ॥

उद्गार टकार निकालना नागवायुका कर्म है १ नेत्रोंके पलक

लगाना खोलना कूर्मवायुका तथा छिंका करना रुकरवायुका
जुंहा देवदत्तवायुका कर्म है ॥ ३६ ॥

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापिधनंजयः ।

एते सर्वासु नाडीषु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ॥ ३७ ॥

और धनंजयवायु सर्वशरीरमें व्याप्त रहताहै मृतशरीरमेंभी
रहताहै अर्थात् मरेमेंभी चार घटीपर्यंत यह शरीरहीमें
इसप्रकार ये दश वायु आपही जीवके अभ्याससे कल्पित होकर
सुखदुःखका संबंध जीवको करातेहैं मैं सुखी हूं उत मैं दुखी हूं
इत्यादि व्यवहारमय जीवकी उपाधि लिंगशरीरमें होनेसे आपही
जीवरूप होकर समस्त नाडियोंमें फिरतारहताहै यद्यपि अवि-
द्यावच्छिन्न चैतन्य जीवही है, तो इसका घूमना फिरना अस्तं-
व है तथापि जैसे चंद्रमा तो कंपाद्यमान नहींहै परंतु उसका प्र-
तिबिंब जलमें जिससमय हो उससमय उस जलको हिलाया-
नाय तो चंद्रबिंब हिलता दीखपडताहै ऐसेही व्यवहारसे दश
वायुनका घूमना तथा इनहीकी उपाधि जीवचैतन्यमें आरोपित
करतेहैं ॥ ३७ ॥

आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्छलति कन्दुकः ।

प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न तिष्ठति ॥ ३८ ॥

जैसे कंदुक (गेंद) हातसे भूमिपर ताडनकरके स्वतः उछ-
लताहै, तैसेही प्राणवायुके स्थान (हृदय) में अपानवायु तथा
अपानवायुके स्थान (गुदा) में प्राणवायुके प्राप्त होनेमें अपा-

नवायु जीवको आकर्षण करके एकत्र स्थित नहीं रहने देता जैसे गेंद खेलनेवालेके वशमें गेंद रहता है ऐसेही अविद्या (माया) के वशमें जीव रहता है ॥ ३८ ॥

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति ।

वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥ ३९ ॥

जीवकारणसे जीवात्मा प्राणअपानवायुके आर्धान है उसी कारणसे इडा और पिंगला नाडीके द्वारा गिरके नाँचे मूलाधार-पर्यंत ऊपर मुख नासिकाछिद्रपर्यंत फिरताही रहता है इसके अतिचंचल होनेसे इतना कठिन है कि प्राणापानवायुके साधनविना वायु नहीं जीता जाता इसके जीते विना हृदयकमलमें ध्यान नहीं होता ॥ ३९ ॥

रज्जुबद्धो यथा ज्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः ।

गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कृष्यते ॥ ४० ॥

जैसे बाजपक्षिके पैरमें डोरी बांधके हिलाते कि छोड़देने पर उड़जाता एवं खींचनेपर फिर हातमें आया जाता है ऐसेही मायाके अंश सत्त्वरजतमोगुणके वासनासे बंधाहुवा जीव बुद्धि की लीनहुयेमें उपाधिरहित शुद्धब्रह्म होगयाहो तभी प्राणापानवायुकरके फिर खींचाजाता है जाग्रत अवस्थामें फिर प्रबुद्धहुये की वृत्ति विषयमें पुनः जीवमायको प्राप्त कियाजाता है ॥ ४० ॥

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोपानञ्च कर्षति ।

ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित् ॥ ४१ ॥

ऊपरसे आज्ञाचक्रगतप्राणवायु नाँचे मूलाधारस्थित अपान-

वायुको तथा मूलाधारगत अपानवायु आज्ञाचक्रस्थप्राणवायुको परस्पर अपने २ ओर आकर्षण करतेहैं योगाभ्यासी पुरुष प्राणायामसे इनहींको जोड़कर योग (जोड़ना) कहतेहैं इसी योग जोड़नेको हठयोग कहतेहैं जो सूर्यचंद्रमा ऐक्य कहतेहैं ॥ ४१ ॥

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।

हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ ४२ ॥

पद् शतानि त्वहोरात्रे सहस्राण्येकविंशतिः ।

एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ ४३ ॥

प्राणवायु सारूप्यको प्राप्त होरहा चिदाभास जीव हकार-करके स्वाधिष्ठानचक्रसे उत्पन्न होताहै और सकारकरके मूलाधारादि चक्रमें प्रवेश करताहै एवंप्रकार ' हंस ' मंत्र (अजपागायत्री) का जप जीव नित्य करताही रहताहै अर्थात् श्वास बाहर निकलनेमें हकार भीतर प्रवेश होनेमें ' स ' कार उच्चारण होताहै सूर्योदयसे पुनः सूर्यास्तपर्यंत ६० घटीमें इस मंत्रकी जपसंख्या २१६०० होतीहै इतना जप जीव स्वतः करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।

अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ।

अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ४५ ॥

वह योगियोंको मोक्ष देनेवाली अजपा नाम गायत्री है इ-

सके संकल्पमात्रसे योगी समस्तपापोंसे छूटजाताहै संकल्पकी विधि यह है कि सूर्योदयसे पहिलेही शयनसे उठकर शुद्धवस्त्र पहन हात, पैर, मुख प्रक्षालन कर शुद्धआसनमें बैठ आचमन करके संकल्पकल्पना इसप्रकार करना कि अद्यह पूर्वदुरहो-
 रात्रचरितनासापुटनिःसृतोच्छ्वासनिःश्वासात्मकपट्शताधिकैक-
 विंशतिसहस्रसंख्याकजपागायत्रीजपं मूलाधारस्वाधिष्ठानम-
 णिपूरानाहतविशुद्धाज्ञाचक्रब्रह्मरन्ध्रस्थितेभ्यो गणपतिब्रह्मविष्णु-
 रुद्रजीवगुरुपरमात्मभ्यः सिद्धिसरस्वतीलक्ष्मी गौरी प्राणशक्ति-
 ज्ञानशक्तिचिच्छक्तिसमेतेभ्यो यथासंख्यं पट्शतं, षट्सह-
 स्रं, पट्सहस्रं, सहस्रमेकं, सहस्रमेकं, सहस्रमेकम् अजपागायत्री
 जपं प्रत्येकं निवेदयामि इति निवेद्य । पुनरद्य प्रातःकाल-
 मारभ्य द्वितीयप्रातःकालपर्यन्तं नासापुटनिःसृतोच्छ्वासनिःश्वासा-
 त्मकं पट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकमजपागायत्रीजपमहो-
 रात्रेणार्हं करिष्ये इति जायमानजपसंकल्पं कृत्वा स्वकृत्यमाचरेत्
 इस अजपाके समान जीवब्रह्मका अभेद कहनेवाला और कोई
 मंत्र नहींहै यह अल्पश्रममें उत्तम फल देनेवाला और जप नहीं.
 क्योंकि प्रातःकाल संकल्पमात्र करनाहै उपांत खाते पिते च-
 लते उठते बैठते सोते सर्वदा सबअवस्थाओंमें उक्त जप आपसे
 होताही रहताहै और अद्वैतानुभव करानेवाला. उसके समान
 अन्य कोई ज्ञानशास्त्र पहिलेभी नहींथा और पीछे होनेवालाभी
 नहींहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित् ॥ ४६ ॥

कुंडलिनी महाशक्तिसे उत्पन्न होरही. तथा प्राणवायुको धारण करनेवाली यही अजपा गायत्री है. जीवात्माकी शक्ति प्राणविद्यास्वरूपभी यहीं है इसीकारण महाविद्याभी इसको कहतेहैं इसे जो योगी पहिचानसके वही योगशास्त्राभ्यासका तात्पर्य जानताहै ॥ ४६ ॥

॥ अथ शक्तिचालनम् ॥

कन्दोर्वे कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ।

ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥ ४७ ॥

अब कुंडलिनीके भेद खोलनेनिमित्त एवं उसकी अधिकता प्रकट करनेकेलिये कुंडलिनीका और प्रकारभी स्थान कहतेहैं कि समस्त ७२००० नाडीनका उत्पत्तिस्थान पूर्वोक्त कंद है इसके ऊपर मणिपूरचक्र कर्णिकामें आठ वृत्तकरके वेष्टित होरही कुंडलिनीशक्ति ब्रह्मरंध्रद्वारके मुखको रोकके सर्वदा रहतीहै ॥ ४७ ॥

येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् ।

मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥ ४८ ॥

प्रबुद्धा बुद्धियोगेन मनसा मरुता सह ।

सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुपुष्ण्या ॥ ४९ ॥

जिम मार्ग (सुपुष्ण्या) करके जन्ममरणके दुःख हर्ण करनेवाला अखंड ब्रह्मानंदपद मिलताहै इस मार्गको रोकके सोई-

(२६)

गोरक्षपद्धति-

हुई कुंडलिनी प्राणवायुके धौकने (उत्तेजन करने) से काला-
ग्निके ज्योतिके संबंधसे प्रबुद्ध (जाग्रत) होकर मन एवं प्राण-
वायुके सहित होके सुपुष्पानामा मध्यनाडीसे ऊपरको जातीहै
जैसे सूची (सुई) अपनेपर पिरोये तागेसहित होनेसे वस्त्रके
अनेक सूत्रोंके मध्यमें प्राप्त होतीहै, तैसे आपही सृष्टि उत्पन्न
करके पद्मचक्र तथा उनके देवताप्रभृति सकलप्रपञ्चको उद्घ-
घन करके ऊपर सहस्रदलकमलके सन्मुख होकर जातीहै
॥ ४८ ॥ ४९ ॥

प्रसुप्तभुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा ।

प्रबुद्धा वह्नियोगेन व्रजत्यूर्ध्वं सुपुष्पया ॥ ५० ॥

सांते सर्पके समान कुंडलिनी अपानवायुसे धमित (धौ-
कागया) जो मूलाधारमें रहनेवाला कालाग्निज्योतिके संबंधसे
प्रबोध पायके अतिवेग (जोर) से चलताहुवा सर्पके समान
कुटिलगति होकर, कमलनालके तंतु (सूत्र) समान सूक्ष्म ज्यो-
तिर्मयस्वरूपा होकर सुपुष्पामार्गसे ऊपरको जातीहै ॥ ५० ॥

उदाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।

कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ ५१ ॥

जैसे कुँची (चावी) से ताला खुलकर कपाट (केवाडे)
खुलजातेहैं तैसेही कुंडलिनीकरके मोक्षद्वार सुपुष्पाके मुखको
योगी अत्याससे खोले जिससे कि कुंडलिनीके प्रबोधदिना,

गाढं वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेतसि ॥

वारंवारमपानमूर्ध्वमानिलं प्रोच्चारयेत्पूरितम् ।

मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावादतः ॥५२॥

दोनहूँ हात (संयुक्तित) अंजली बांधके दोऊ (कर्पर) बा-
हुमध्यभाग हृदयमें दृढ स्थापन करके पश्चासन करे चिबुक
(ठोड़ी) हृदयमें दृढतर लगायके अर्थात् जालंधरबंध करके
ज्योतिःस्वरूपका ध्यान करे केवल कुंभकप्राणायाम अधोद्वार
रोकके करे प्राणायामसे कुंभितवायुको अपानवायुसे एकत्व
करके यथाशक्ति कुंभक करे पुनः रेचकप्राणायाम (जिसमें
वायु अतिमंद २ निकस) करे इसप्रकारसे कुंडलिनीका बोध
होताहै तथा योगीको अपारिमित ज्ञान मिलताहै, कुंडलिनीके
प्रबोध करनेवाली शक्तिचालनमुद्रा यही होतीहै परंतु प्राणायाम-
मके अभ्याससे प्राणायानवायुको वशवर्ती करके इस मुद्राका
बहुत कालपर्यंत अभ्यास करना होताहै ॥ ५२ ॥

अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमसञ्जातवारिणा ।

कट्वम्ललयणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः ।

अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥५४॥

शक्तिचालनमुद्राके अभ्यासके नियम कहतेहैं कि प्राणा-
शामादिकर्मसे जो अंगोंमें स्वेद (पसीना) आताहै उसमें अंगमर्दन
ले लवण और खट्टा ये दो रस न खाये केवल दुग्धान्न खाया-
! भोजनभी एक प्रमाणसे केवल अक्षय रखे कामयोगसे र-

(२८)

गोरक्षपद्धति-

हित रहै त्यागवान् होवै योगाभ्यासका मात्र अभ्यास रखे इ-
सप्रकार नियममें रहकर योगाभ्याससे शक्तिचालनमुद्राके अ-
भ्यास करे एकवर्ष ऊपर जब इच्छा करे तभी कुंडलिनीके
अभ्युत्थानके सामर्थ्य होती है इसमें सिद्धि होती है वा नहीं ऐसा
संदेह न करना अभ्याससे अवश्यमेव सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥
॥ ५४ ॥

सुस्निग्धो मधुराहारी चतुर्थांशविवर्जितः ।

भुञ्जते स्वरसं प्रीत्यै मिताहारी स उच्यते ॥५५॥

मिताहारके लक्षण कहते हैं स्निग्ध (सचिकण) मीठा भो-
जन करे अम्ल (खट्टा) और लवणवर्जित करे दो भाग अन्न
एक भाग जल स्वादे चौथा भाग उदरमें वायुसंचारकेलिये
छोड़देय, देवताको निवेदन करके दुग्धान्न भोजन करे इसप्रकार
विधि करनेहारा योगी मिताहारी कहाता है ॥ ५५ ॥

कन्दोर्ध्वे कुण्डली शक्तिः शुभमोक्षप्रदायिनी ।

बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स वेदवित् ॥५६॥

कंदके ऊपर मणिपूरचक्रके कर्णिकामें ८ फेरे वेष्टित होकर
कुंडलाकार कुंडलिनी शक्ति है यह मूर्खजनोंको बारबार ज-
न्ममरणरूप बंधन देती है ओर योगाभ्यास जाननेवालेको श-
क्तिचालनका अभ्यास जन्ममरणरूप बंधन छुटायके में
देती है ॥

अथ शक्तिचालनविधौ ग्रन्थान्तरे विशेषः ॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरुण्डा तपस्विनी ।

बलात्कारेण गृहीयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १ ॥

शक्तिचालनमें ग्रंथांतरमतसे कुछ विशेष कहतेहैं कि, गंगा-यमुनाके बीच तपस्विनी बालरुण्डा बलात्कारकरके कुण्डलिनीको ग्रहण करे तो विष्णुके परमपद (ब्रह्मांड) में प्राप्त करतीहैं ॥ १ ॥

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।

इडापिङ्गलयोर्मध्ये बालरुण्डा च कुण्डली ॥ २ ॥

इडा भगवती वामश्वासा नाडी ऐश्वर्यादित्पन्न गंगा, दक्षिणश्वासा पिंगलानाम्नी यमुना है इनके मध्यनाडी सुषुम्णा बालरुण्डा है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रं तु विस्तारं चतुरङ्गुलम् ।

श्वेतं तु मृदुलं प्रोक्तं वेष्टितं वरलक्षणम् ॥ ३ ॥

मूलस्थानसे वितस्तिमात्र ऊपर नाभि एवं मेढ्रके मध्यमें नवांगुल विस्तार, चार अंगुल आयाम, पक्षीके अंडाकार, श्वेत-तरंग कोमल वस्त्रवेष्टित जैसा कंद है ॥ ३ ॥

सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दहम् ।

गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ॥ ४ ॥

वज्रासनकरके हाथोंसे पैरोंके एही पकड़ कंदस्थानमें दट लगाय पीडन करे ॥ ४ ॥

वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम् ।

कुर्यादनन्तरं भस्मां कुण्डलीमाशु बोधयेत् ॥ ५ ॥

योगी वज्रासनमें बैठ कुंडलीको शक्तिचालनमुद्रासे चलापमान करे तब भस्मा नाम कुम्भक कर कुंडलिनीशक्तिको शीघ्र प्रबोधित करे ॥ ५ ॥

भानोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः ।

मृत्युवक्त्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः ॥ ६ ॥

नाभिस्थान (सूर्य) को आकुंचन कर कुंडलीको चलावे इसका अभ्यास सिद्ध होजाय तो मृत्युके मुखमें पडगयाहो तौ भी उसकी मृत्यु न होवे ॥ ६ ॥

मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं चालनादसौ ।

ऊर्ध्वमाकृष्यते किञ्चित्सुषुम्णायां समुद्रता ॥ ७ ॥

चार घण्टीपर्यंत निर्भय होकर शक्तिचालन करे तो कुंडलिनी कुछक सुषुम्णामें ऊपरका ऊठतीहै ॥ ७ ॥

तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्णाया मुखं ध्रुवम् ।

जहाति तस्मात्प्राणोयं सुषुम्णां व्रजति स्वतः ॥ ८ ॥

इतसे कुंडलिनी (जो सुषुम्णा रोक बैठीहै) सुषुम्णाका द्वारको छोड़ेतीहै तब प्राणवायु आपही सुषुम्णामें प्रवेशकरताहै ॥ ८ ॥

तस्मात्सञ्चालयेन्नित्यं सुप्तसुप्तामरुन्धतीम् ।

तस्याः सञ्चालनेनैव योगी रोगे प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इससे नित्यप्रति सुषुम्णादारमें सोती कुंडलिनीको चलाच-
ट्टजावे ॥ ९ ॥

येन सञ्चालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम् ।

किमत्र बहुनोक्तेन कालं जयति लीलया ॥ १० ॥

जिस योगीने शक्तिचालन किया वह अणिमादिसिद्धि-
योंका पात्र होताहै और विशेष माहात्म्य क्या कहाजाय वह
काल (मृत्यु) को सहजही जीतलेताहै ॥ १० ॥

कुण्डलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद्विशेषतः ।

एवमभ्यस्यतो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ ११ ॥

जो यमी नित्य कुंडली चलायके भस्त्रा कुंभकका अभ्यास
विशेषकरके करताहै तो उसको यमकी तय नहींहोती ॥ ११ ॥

इयं तु मध्यमा नाडी दृढाभ्यासेन योगिनाम् ।

आसनप्राणसंयाममुद्राभिः सरला भवेत् ॥ १२ ॥

योगियोंको दृढाभ्याससे आसन प्राणायाम महामुद्रादि
करके (मध्यनाडी) सुषुम्णा सरल होजातीहै ॥ १२ ॥

॥ अथ महामुद्राः ॥

महामुद्रां नभोमुद्रां उड्डीयानं जलंधरम् ।

मूलबन्धश्च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः ॥ ५७ ॥

महामुद्रा १ खेचरोमुद्रा २ उड्डीयानबन्ध ३ जालंधरबन्ध ४
मूलबन्ध ५ इनको करके शक्तिचालन करे तो योगी मुक्तिभाज-
न होताहै शक्ति चली वा नहीं इसके जाननेका प्रमाण यहहै कि
जैसे शरीरमें पिपीलिका (चींठी) चलनेमें उसकी गतिसे ज्ञात
जाहै कि कुछ जीव चलताहै, ऐसेही सुषुम्णामें वायु जन च-

लने लगताहै तो शक्ति चलायमान होगयी जानना शक्तिचा-
लनमुद्राके पीछेभी उक्त ५ मुद्रा करनी योग्य है ॥ ५७ ॥

वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्घ्रिणा
हस्ताभ्यामनुधारयेत् प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् ।

आपूर्य्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बद्धा शनै रेचये-

देपा व्याधिविनांशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते ५८

महामुद्राकी विधि कहतेहैं कि हृदयमें, चिबुक जोरते
धारणकरके वामपादके एडीसे योनिस्थानके अत्यंत दृढकरके
अचेते दहिना पाद लंबा करके दोनहूँ हाथोंसे पादमध्यभाग
पकड़के दृढ रोके, तब पेटमें पूरक विधिसे वायु भरे कुछ काल
यथाशक्ति कुंभक करके मंद मंद वायुको रेचन करे, यह योगि-
जनको समस्त रोगनाशक महामुद्रा कहीहै ॥ ५८ ॥

चन्द्राङ्गेन समभ्यस्य सूर्याङ्गेनाभ्यसेत्पुनः ।

यावज्जुल्य भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ ५९ ॥

इस महामुद्राके अभ्यासमें प्रथम वामांगसे अभ्यास करके
पीछे दाहिने अंगसे करे वैसेही प्राणायामभी करतारहे जब दोनहूँ
ओरके अभ्याससे प्राणायामकी मात्रा बराबर होजाय तब मु-
द्रा छोडनी तबतक उक्त अभ्यास करतारहता ॥ ५९ ॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः ।

अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ६० ॥

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीणपुरोगमाः ।

। यान्ति महामुद्रां च योभ्यसेत् ६१

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् ।

गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्याचित् ॥६२॥

जब महामुद्राका अभ्यास दृढ़ होजाय तो, पथ्यापथ्यविचार कुछ नहीं रहता. मिष्ठ, लवण, तिक्तआदियों स्वाद कुछ नहीं रहता. जो (घृत, सहद घरावर मिलायके कृत्रिम विष होताहै) संयोगविरुद्धवस्तु, वा घोरविषभी खावै तो अमृतके समान पचिजाताहै तथा उदावर्त, गुल्म, अजीर्ण, क्षय, कुष्ठ, आदि रोग समस्त शांत होजातेहैं. इसके अभ्यासीको महासिद्धि देनेहारी यह महामुद्रा कहीहै इसे घडे यबसे गुप्त रखना प्रकाश करनेसे सामर्थ्यहीन होतीहै इसेतु अनधिकारी, अयोग्य पुरुष, शठ, दांभिकआदि जैसे कैसेको न देना ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

‘इसका विस्तार ग्रंथांतरसे पाठकोके सुबोधार्थ लिखतेहैं.’-

पादमूलेन वामेन योनिं संपीड्य दक्षिणम् ।

प्रसारितं पद कृत्वा कराभ्यां धारयेद्वटम् ॥ १ ॥

वामपादके एडीसे गुदा और शिश्नके मध्यमें योनिस्थानको रोकक दाहिना पैर लबा पृथ्वीमें फैलाय जैसे एडी भूमिमें रहै और अंगुली ऊंची दंडकेसे नाई रहें. तब हातोंके अगुष्ठ और तर्जनीसे दक्षिणपादांगुष्ठ पकड़के धारणकरे ॥ १ ॥

कण्ठे बन्धं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः ।

यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते ॥ २ ॥

तेदनंतर कंठमें जालंधारबन्ध करके वायुको ऊपर सुपुष्णामें

धारण करे इससे मूलबंधभी होजाताहै जहां योनिस्थानको पीडन और जिह्वाबंध करके मूलबंध होजाताहै ॥ २ ॥

ऋज्वीभूता तथा शक्तिः कुण्डली सहसा भवेत् ।

तदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया ॥ ३ ॥

जैसे सर्प दंडके प्रहारसे दंडाकार होजाताहै ऐसेही कुंडलिनी शक्तिभी कुटिलताकी छोड़कर इस मुद्रासे सरल होजातीहै और कुंडलिनीके बोधसे सुषुम्णामें वायुका प्रवेश होताहै तब दोनहूँको प्राणके वियोगसे इडा पिंगला हैं आश्रय जिसके ऐसी मरणावस्था होतीहै ॥ ३ ॥

ततः शनैः शनैरेव रेचयेन्नैव वेगतः ।

महामुद्रां च तेनैव वदन्ति विबुधोत्तमाः ॥ ४ ॥

इयं खलु महामुद्रा महासिद्धैः प्रदर्शिता ।

महाक्लेशादयो दोषाः क्षीयन्ते मरणादयः ॥ ५ ॥

तदनंतर शनैः शनैः रेचन करै वेगसे करनेमें बलहानि होतीहै इससे महामुद्राआदि नाथादि महासिद्धोंने दिखाईहै इसके अभ्याससे महाक्लेश, अविद्या, राग, द्वेषादिक, शोकमोहादिदोष क्षीण होतेहैं तथा जरामरणभी नहींहोते इससे ज्ञानिजन इसे महामुद्रा कहतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महामुद्रां च तेनैव वदन्ति विबुधोत्तमाः ।

चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।

यावत्तुल्या भवेत्संतुल्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ ६ ॥

कि (चंद्रांग) वामभागमें अभ्यास

सूर्याग (दक्षिणभाग) में अभ्यास करे और वामांगाभ्यासके पीछे जबलौ वामांगमें कुंभाककी संख्या समान हो तबलौ अभ्यास करे जब संख्या समान हो तब महामुद्रा विसर्जन करे इसमें यह क्रम है कि वामपादके एड़ीको योनस्थानमें लगाय दाहिना पाद लंबा फैलाय अंगुष्ठको हातके अंगुष्ठ तर्जनीसे पकड़के अभ्यास करे यह वामांगाभ्यास है इससे पूरित जो वायु सो वामांगमें स्थित रहता है फिर दक्षिणपादको समेटता की एड़ी योनिमें लगाय वामपाद लंबा फैलाय अंगुष्ठको हातके अंगुष्ठ तर्जनीसे पकड़के अभ्यास करे इसे दक्षिणांगाभ्यास कहते हैं इससे पूरित वायु दक्षिणांगहीमें रहता है ॥ ६ ॥

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेपि नीरसाः ।

अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते ॥ ७ ॥

गुण कहते हैं कि महामुद्राके अभ्यासको पथ्यापथ्यविचार नहीं है कटु, अम्लादि समस्त रसादिक जो स्वाय वहाँ पचजावै नीरस, बासी, पर्युषित सब पचे. तथा दुर्जर (घोर विष) आदि भी अमृतके नाई पचजावै ॥ ७ ॥

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।

तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योभ्यसेत् ॥ ८ ॥

जो पुरुष महामुद्राका अभ्यास करे उसे क्षयरोग, कुष्ठ, गुल्मरोग, अजीर्ण, ज्वर, प्रमेह, उदररोग आदि कभी न हों ॥ ८ ॥

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् ।

गोपनोया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित् ॥ ९ ॥

(३६)

गोरक्षपद्धति -

और उस अभ्यासीको अणिमादि महासिद्धि देनेहारी यह महामुद्रा कहीहै इसे गुप्त रखना अर्थात् अनधिकारीको न देना ॥ ९ ॥

॥ अथ खेचरीमुद्रा ॥

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।

ध्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ६३ ॥

खेचरीमुद्राकी विधि कहतेहैं कि, जिह्वाको उलटे फिरायके कंठमूलमें जो छिद्र (लिङ्गलिंग्या) यानि क्षुद्रचटिका है उसमें प्रवेश करना तदनंतर धूमध्यमें निश्चल दृष्टि स्थिर करना इसे खेचरीमुद्रा कहतेहैं ॥ ६३ ॥

न रोगान्मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा ।

न मूर्च्छा तु भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ६४ ॥

जो योगी गुरुपादिष्ट मार्गकरके छेदन, दोहन, कर्पण, (ये-कर्म आगे कहेंगे) प्रकारसे खेचरीमुद्राको बहुतकालपर्यंत अभ्यास करताहै उसको रोग, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्च्छा और मरणतुल्य कष्ट दूर होतेहैं ॥ ६४ ॥

पीड्यते न च शोकेन न च क्लिप्येत कर्मणा ।

वाध्यते न स केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ६५ ॥

जो योगी खेचरीमुद्रा जानके उन अभ्यास करिके सिद्धि करताहै वह शोकसे पीडित नहींहोता, कर्मके फलमें बंधन नहीं मृत्यु आदियेसिद्धो बाधा नहींपाता ॥ ६५ ॥

चित्तं चलति नो यस्माज्जिह्वा चरति खेचरी ।
तेनेयं खेचरी सिद्धा सर्वसिद्धैर्नमस्कृता ॥ ६६ ॥
जिसकारण तहां परब्रह्मविषये एकाग्र होकर मन बुद्धि
चित्त शून्यविषे फिस्ताहै तथा जिह्वाभी कंठमूल छिद्राकाशमें
रहेके ब्रह्मरंध्रांतर्गत चंद्रकेलामृतका पान करतीहै इस हेतुसे
मनबुद्धिके विषयबंधन निवारण करनेहारी खेचरी मुद्रा समस्त
सिद्धजनेंसे अत्यंत पूजित (नमस्य) है ॥ ६६ ॥

विन्दुमूलं शरीराणां शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः ।
भावयन्ति शरीराणामापादतलमस्तकम् ॥ ६७ ॥
शरीरका मूल (कारण) बिंदु है इससे शरीरकी रक्षा है।
पादसे शिरपर्यंत समस्त नाडीजाल बिंदुसे सेचन होरहीहैं इसी-
हेतु उक्तनाडी सजीव स्वकर्मसामर्थ्य रहतीहैं अर्थात् समस्त
नाडी बिंदुके आधारमें हैं ॥ ६७ ॥

खेचर्या मुद्रया येन विवरं लम्बिकोर्ध्वतः ।
न तस्य क्षरते विन्दुः कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥ ६८ ॥
जिस योगीने कंठनालके छिद्रलंबिकाके ऊपर आकाशविषे
खेचरीमुद्रासे रोकलिया. तो चंद्रामृत रुकनेसे उस योगीको
कामिनी (स्त्री) आलिंगन करै तौभी उसका मन चलायमान
नहींहोता तथा बिंदु नहींगिरताहै ॥ ६८ ॥

यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्योर्भयं कुतः ।
यावद्ब्रह्मा नभोमुद्रा तावद्विन्दुर्न गच्छति ॥ ६९ ॥
जबलौ देहमें बिंदु स्थिर है. तावत् मृत्युकी भय नहींहोती

विंदुका स्थान व्योमचक्र है इससे कालकी गति नहीं है, जबलौ खेचरीमुद्रा दृढ़ है तबलौ विंदु व्योमचक्रसे नहीं गिरता, इसके स्वस्थानस्थ रहनेमें कालका वश नहीं चलता ॥ ६९ ॥

चलितोपि यदा विन्दुः संप्राप्तश्च हुताशनम् ।

व्रजत्यूर्ध्वं हृते शक्त्या निरुद्धो योनिमुद्रया ॥७०॥

कदाचित् एकाम्र न होनेसे विंदु उत्तरके नाभिस्थान सूर्यमंडलमें पहुँच गया तो योनिमुद्राकरके कुडलिनीशक्तिको ऊपर उठाये उसके आघातसे उक्त विंदु पुनः ऊपर लौटके अपनेही स्थानमें प्राप्त होकर स्थिर रहता है ॥ ७० ॥

स पुनर्द्विविधो विन्दुः पाण्डुरो लोहितस्तथा ।

पाण्डुरः शुक्रमित्याहुर्लोहिताख्यो महारजः ॥७१॥

उक्त विंदु दो प्रकारका होता है एक तो पाण्डुरवर्ण जिसे शुक कहते हैं दूसरा (लोहित) रक्तवर्ण इसे महारज कहते हैं ॥ ७१ ॥

सिन्दूरद्रवसंकाशं नाभिस्थाने स्थितं रजः ।

शशिस्थाने स्थितो विन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम् ७२

तेल मिलायेके सिंदूर (हिंगुल) का द्रव (रस) के समान रज सूर्यस्थान नाभिमंडलमें रहना है तथा विंदु (वीर्य) चंद्रमाके स्थान कंठदेश पौडशास्त्रचक्रमें स्थिर रहता है इन दोनों का ऐक्य (मेल) अत्यंत दुर्लभ है ॥ ७२ ॥

विन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो विन्दू रजो रविः ।

अनयोः सद्भादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥ ७३ ॥

यह है, इनके एक होनेमें योगमिद्धि है ॥

परमपद मिलताहै चंद्रमा सूर्यका (प्राणवायु अपानवायुका जी-
वात्मा परमात्माका) ऐक्य करना यही हठयोगपदका अर्थ है
॥ ७३ ॥

वायुना शक्तिचारेण प्रेरितं तु यदा रजः ।

याति बिन्दोः सहैकत्वं भवेद्दिव्यं वपुस्ततः ॥७४॥

शक्तिचालनविधिसे वायुकरके जब रजं बिंदुके साथ ऐ-
क्यको प्राप्त होताहै तब शरीर दिव्य होजाताहै अर्थात् उसे
अग्नि जलातिनिहीं शस्त्रसे कटतानहीं ॥ ७४ ॥

शुक्रं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्येण संयुतम् ।

तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित् ॥७५॥

शुक्र बिंदुरूप हो चंद्रमासे मिला और रज रक्तरूप होकर
सूर्यसे मिला इनका (समरसैकत्व) चंद्रसूर्यस्वरूप बिंदुरज-
का समरसत्वभावको जो योगी जानताहै वह योगवित् कहा-
ताहै चंद्रमा एवं सूर्यको योगको योग कहातेहैं ॥ ७५ ॥

शोधनं नाडिजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः ।

रसानां शोषणञ्चैव महामुद्राभिधीयते ॥ ७६ ॥

नाडोजालके शोधनसे, इनमें रहनेवाले वात-पित्त-कफादि
रोगोंका हरण होताहै. चंद्रसूर्यके चालनसे इनके एकत्र होनेमें
खाया अन्न, पिया जलका शोषण होताहै ऐसा महामुद्राका
फल है. अर्थात् इस मुद्राकरके नाडिजालका शोधन चंद्रसूर्य-
मेलन रसोंकाशोषण होताहै ॥ ७६ ॥

॥ ग्रन्थान्तरे खेचरीमुद्राविधिः ॥

छेदनचालनदोहैः कलां क्रमेण वद्धयेत्तावत् ।

यावदक्षूमध्यं तु स्पृशति तदा खेचरीसिद्धिः ॥ १ ॥

जिह्वा खेचरीयोग्य करनेकी विधि ग्रंथांतरसे कहतेहैं कि छेदन-चालन-दोहनकर्मसे जिह्वा बढताहै, छेदन आगे कहेंगे, चालन यहहै कि अंगुष्ठ और तर्जनीसे जिह्वाको हिलाते रहना, दोहन दोनहूँ हाथोंके अंगुष्ठ तर्जनीसे जैसे गौके थनको दुहै ऐसे खींचखींचके जिह्वाको लंबी करे जबतक बाहर निकलकर छुकुटीको स्पर्शन करे तबतक ये विधि करतारहै ॥ १ ॥

सुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम् ।

समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥ २ ॥

छेदन कहतेहैं कि धूहरके पत्रके समान अति तीक्ष्ण, सचिक्कण निर्मल शस्त्रसे जिह्वाके नीचेकी नशको रोममात्र छेदनकरे ॥ २ ॥

ततः सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रघर्षयेत् !

पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥ ३ ॥

तापीछे सेंधा, नीमक, हर्डका चूर्ण छेदितस्थानपर मले. परंतु योगीको लवणनिषेध है इसलिये लवणके स्थान सदिर (कत्था) से कार्प्य करना योग्य है ऐसे सायंप्रातः सात दिन करके फिर पूर्वोक्त विधिसे रोममात्र काटे पुनः उक्त औषधी लगातारहै ॥ ३ ॥

एवं क्रमेण पण्मासं नित्यं युक्तः समाचरेत् ।

पण्मासाद्रसनामूलशिलां बन्धः प्रणश्यति ॥ ४ ॥

ऐसे छः नित्य युक्तिसे करे तो जिह्वा

नाडी जो जिह्वाको कपालकुहरमें पौछाँनेसे रोकतीहै वह सुख-
पूर्वक कटजातीहै ॥ ४ ॥

● कलां पराङ्मुखीं वृत्त्वा त्रिपथे परियोजयेत् ।
सा भवेत् खेचरी मुद्रा व्योमचक्रं तदुच्यते ॥ ५ ॥
जिह्वाको तिछीं करके तीनहूँ नाडियोंका मार्ग जो कपाल-
छेद इसमें योजित करै ये खेचरीमुद्रा है इसीको व्योमचक्रभी
कहतेहैं ॥ ५ ॥

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्द्धमपि तिष्ठति ।
विपैर्विमुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥ ६ ॥
तालूके ऊपर छिद्रमें जिह्वाप्रवेश करके एकबड़ीमात्र खेचरी
मुद्रा स्थिर रहे तो योगी तो सर्प विछूआदियोंका विष न लगे
और बुढ़ापा, रोग, मृत्युवंगे जीते बलीरलित (जो बुढ़ापेमें च-
र्मे टोला होकर सलबटे पड़तीहैं) न होवें ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासाद्धेन न संदेहो मृत्युं जयति योगवित् ॥ ७ ॥
तालूके ऊपर छिद्रके सम्मुख जिह्वा लगाय स्थिरकरके धू-
मध्यगत चंद्रमासे निकसे अमृताका पान जो योगी करे वह १
१५ (१५) दिनमें मृत्युको निस्संदेह जीत लेताहै यह निश्चय
है ॥ ७ ॥

नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरे यस्य योगिनः ।
तक्षकेणापि दृष्टस्य विषं तस्य न सर्पति ॥ ८ ॥
और जिस योगीका शरीर नित्य उक्त चंद्रामृतकरके पू-

(४२)

गोरक्षपद्धति-

र्ण होजाय तो तक्षकनागभी उसे डसे तौभी विष न लगे, दुःख न होवै ॥ ८ ॥

इन्धनानि यथा वह्निस्तैलवार्तिं च दीपकः ।

तथा सोमकलापूर्णं देही देहं न मुञ्चति ॥ ९ ॥

जैसे अग्नि काष्ठको एवं दीपक तेलसहित बत्तीको नहींछो-
डते तैसेही चंद्रामृतपूरित देहको जीव क दापि नहींछोडता ॥ ९ ॥

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम् ।

कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः ॥ १० ॥

आचार्य कहतेहैं कि जो योगी नित्य गोमांस भक्षण एवं
अमरवारुणी पान करे तो उसे हम उत्तमकुलमें उत्पन्न समझतेहैं
अन्यथा कुयोगी, कुलनाशक हैं सत्कुलमें उत्पन्न हुयेभी तो उ-
नका जन्म व्यर्थ है ॥ १० ॥

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि ।

गोमांसभक्षणं तत् महापातकगणनम् ॥ ११ ॥

इस गोमांसशब्दका अर्थ कहतेहैं कि गोशब्दकरके यहाँ
जिह्वाका बोधक है जिह्वाको कपालछिद्रमें प्रवेश करनेको
गोमांस भक्षण कहतेहैं, यह महापातकोंका नाश करताहै ॥ ११ ॥

जिह्वाप्रवेशसंभूतयद्विन्नोत्पादितः सलु ।

चन्द्रात्स्रयाति यः सारः स स्यादमरवारुणीम् ॥ १२ ॥

अमरवारुणीका अर्थ है कि तालुके ऊपर छिद्रमें जिह्वाके
प्रवेश उत्पन्न (मार्ग) से, चंद्रात् चंद्रागत स्थित चंद्रामृत

श्रवित होकर जिह्वायमें प्राप्त होताहै इसे अमरंवारुणीपान कहतेहैं ॥ १२ ॥

चुम्बन्ती यदि लम्बिकायमनिशं जिह्वा सरस्यन्दिनी
सक्षारा कटुकाम्लदुग्धसदृशी मध्वाज्यतुल्या तथा ।
व्याधीनां हरणं जरान्तकरणं शस्त्रागमोद्गीरणं
तस्य स्यादमरत्वमष्टगुणितं सिद्धाङ्गनाकर्षणम् ॥ १३

जब पूर्वोक्तकर्मसे जिह्वा बढायके उक्त विधिसे चंद्रामृत पान करने लगतीहै तो मुखमें लवणसहित मिर्चिचादि, चिंचा- फलादि, दुध, मधु, घृतके आदि स्वाद आपसे जात होतेहैं तब योगीको रोग तथा वृद्धावस्थाका नाश होताहै शस्त्र (जो अपने- को काटने आया) का निवारण होताहै आठों सिद्धि मिलतीहैं देवताय मिलताहै सिद्धांगनाओंके आकर्षणके सामर्थ्य हो- तीहै ॥ १३ ॥

मूत्रं षोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तं हठा-
दूर्ध्वास्थो रसनां नियम्य विवरे शक्तिं परां चिन्तयन् ।
वत्कलोलकलाजलं च विमलं धारामयं यः पिबे-
न्निर्व्याधिः समृणालकोमलवपुर्योगी चिरं जीवति १४
जिह्वाको कपालछिद्रमें लगाय मुख विपरीतकर्णाके तरह
कंचाकर कुंडलिनीके ध्यानसहित प्राणायामसे भुक्रुटीमध्य
दिदलकमलके नीचे पंठरथ षोडशदलकमलमें हृदयोगसे प्राप्त
जो निर्मलधारामय तरंगसहित चंद्रामृतरस है इसे जो योगी पान
कर उसको ज्वरादिरोग न होते तथा कमलके गांवकासा कोमल
शरीर होकर बहूनकालपर्यंत जीवे ॥ १४ ॥

यत्प्रालेयं प्रहितसुपिरं मेरुमूर्धान्तरस्थं
 तस्मिन्तत्त्वं प्रवदति सुधीस्तन्मुखं निम्नगानाम् ।
 चन्द्रात्सारः स्रवति वपुषस्तेन मृत्युर्नराणां
 तद्विधीयात्सुकरणमथो नान्यथा कार्यसिद्धिः ॥ १५ ॥

मेरुपर्वतसदृश स्रवसे ऊंची सुपुष्पाके उपरीभागमें स्थित चन्द्रामृतरूप जल जिसमें स्थित है ऐसे छिद्रमें सत्त्वगुणात्मा बुद्धि-
 करके आत्मतत्त्व है, और गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, संज्ञक
 इडा, पिंगला, सुपुष्पा, गांधारी, आदि नाडियोंका उक्तविवरमें
 मुख हैं इनके द्वारा चन्द्रमंडलादागत अमृत व्यर्थ चलेजानेसे
 शरीर जरामृत्युको प्राप्त होता है इसलिये प्रथम कहआये हैं कि
 सुकरण नाम खेचरीमुद्रा करके चन्द्रामृत व्यर्थ स्रवित नहीं हो-
 नेसे मृत्यु नहीं होती, इस मुद्राके बिना देहकी सिद्धि, लावण्य,
 बल, वज्रसमान दृढ शरीर, नहीं होते ॥ १५ ॥

सुपिरं ज्ञानजनकं पञ्चस्रोतःसमन्वितम् ।

तिष्ठते खेचरीमुद्रा तस्मिन् शून्ये निरञ्जने ॥ १६ ॥

इडा १ पिंगला २ सुपुष्पा ३ गांधारी ४ हस्तिजिह्वा ५
 इनका प्रवाह ऊपरको है सो इनके प्रवाहसंयुक्त आत्माकों सा-
 क्षात् प्रकट रहनेवाला विवर है सो आविद्या एवं अविद्याके
 कार्य, शोक, मोहादि दूर होते हैं जिसमें ऐसे विवरमें खेचरी-
 मुद्रा स्थित होती है ॥ १६ ॥

एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी ।

एको देवो निरालम्ब एकावस्था मनोन्मनी ॥ १७ ॥

समस्त बीजोंमें मुख्य सृष्टिरूप एक प्रमाण वह है समस्तदे-
वताओंमें भगवान् मुख्य है तैसेही समस्त मुद्राओंमें खेचरी मुख्य
है ॥ १७ ॥

उड्यानं कुरुते यस्माद्विश्रान्तं महासगम् ।

उड्डीयानं तदेव स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ७७ ॥

जिसकारण उड्डीयानबंधसे रुका प्राणवायु कहींभी विश्राम
न करके उडके जैसा सुपृष्णामें गति करताहै उसीकारण तहां मृ-
त्युरूपी गजके ऊपर सिंह जैसा यही बंध बहाताहै ॥ ७७ ॥

उदरात्पश्चिमे भागे अधो नाभेर्निगद्यते ।

उड्डीयानो ह्ययं बन्धस्तत्र बन्धो निगद्यते ॥ ७८ ॥

उड्डीयानबंधका स्थान कहतेहैं कि उदरसे पश्चिम और
नाभीसे नीचे इस बंधका स्थान योगी कहतेहैं इसलिये यह बंध
उसी स्थानमें करना योग्य है ॥ ७८ ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

उदरे पश्चिमं स्थानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।

उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १ ॥

नाभीका ऊपरला तथा नीचला भाग उदरमें लगजाय ऐसे
पेटके पीछे खींचे इसे उड्डीयानबंध कहतेहैं मृत्युरूपी गजको
निवृत्त करनेकेलिये सिंहसमान है ॥ १ ॥

उड्डीयानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा ।

अभ्यसेत्सततं यस्तु वृद्धोपि तरुणायते ॥ २ ॥

हितोपदेशकर्त्ता गुरुकरके सहजस्वभाव कहागया ऐसे

बंधको निरंतर अभ्यास करे तो वृद्धभी तरुण होजावै ॥ २ ॥

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि स्थानं कुर्यात्प्रयत्नतः ।

पण्मासमभ्यसेन्मुत्तुं जयत्येव न संशयः ॥ ३ ॥

नाभिउर्ध्वाध-भागोंको खींचकर पीठमे लगावै. ऐसे इस बंधको छः महिनापर्यंत निरंतर अभ्यास करे तो निस्सदेह मृत्युको जीतै ॥ ३ ॥

सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानकः ।

उड्डियाने दृढे बन्धे मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥ ४ ॥

संपूर्ण बंधोंमें उड्डीयानबंध उत्तम है यह दृढ होजाय तो स्वभावसिद्ध मुक्ति होतीहै. इसके करनेसे पक्षियोंकेभी गतिकरके सुपुष्पाद्वारा प्राण मतिष्कमें लेजानेसे समाधिमें मोक्ष होताहै यही स्वाभाविकी मुक्ति है ॥ ४ ॥

बध्नाति हि शिरोजालं नाधो याति नभोजलम् ।

ततो जालंधरो बन्धो कण्ठदुःस्वोघनाशनः ॥ ७९ ॥

जालंधरबंध कहतेहैं कि यह बंध कठस्थानमें होताहै अनेक रोगोंको हरताहै शरीरस्थ नाडीजालका बंधन करताहै व्योम-चक्रस्थ चंद्रकलामृतकी कपालकुहरसे नीचे नहीं गिरनेदेता इसकारण वह जालंधरबंध बड़ाहै ॥ ७९ ॥

जालंधरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणं ।

न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति ॥ ८० ॥

कंठका संकोचन करके प्राणवायुकी गतिकी रोकना जा-

लंघर बंध है इससे चंद्रकलामृत गिरके सूर्यरूप अग्निमें नहीं प-
डा एवं वायु कदाचित् विरुद्ध नहीं होता ॥ ८० ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिवुकं दृढम् ।

बन्धो जालंघराख्योयं जरामृत्युविनाशकः ॥ १ ॥

प्रथांतरसे जालंघरबंध कहते हैं कि बंठ नाचे नवाय हृदय-
के चार अंगुल अंतर ढोडी लगाय दृढ स्थापन करे यह जा-
लंघरबंध वृद्धावस्था तथा मृत्युनाशक है ॥ १ ॥

कण्ठसंकोचनेनैव द्वे नाड्यो स्तम्भयेद्वृढम् ।

मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधारबन्धनम् ॥ २ ॥

दृढके संकोचनमात्र करके इडा पिंगला दोनहूँ नाडी स्तंभित
होती हैं, कंठस्थानमें जो विशुद्धनामा चक्र है वह अंगुठादि ब्रह्म-
रंध्रांत षोडश आधारोंका मध्यम चक्र है इन १६ आधारोंका
वर्णन पूर्व १३ श्लोकके टीकामें करआये हैं ॥ २ ॥

मूलस्थानं समाकुञ्च्य उद्दीयानं तु कारयेत् ।

इडां च पिङ्गलां वद्धा बाह्येत्पश्चिमे पाथि ॥ ३ ॥

नाभिकी पश्चिम तानरूप ठट्टीपानबंध करे और कंठ न-
मायं जालंघरबंधसे इडा पिंगला नाडीनको स्तंभन करे तदनंतर
पश्चिममार्ग सुषुम्णामें प्राणवायुको प्राप्तकरे ॥ ३ ॥

अनेनैव विधानेन प्रयाति पवनो लयम् ।

ततो न जायते मृत्युर्जरारोगादिकं तथा ॥ ४ ॥

इस विधिसे वायुकी गति बंद होकर प्राणवायु स्थिर हो-

(४८)

भोरक्षपद्धति-

कर ब्रह्मरंध्रमें स्थित रहताहै. इसे प्राणालय कहतेहैं इससे मृत्यु, जरा, रोग, देहकी त्रिपली, श्वेतरोगता, मूर्छा, आलस्यादिक, नहीं होतहैं ॥ ४ ॥

बन्धत्रयमिदं श्रेष्ठं महासिद्धैश्च सेवितम् ।

सर्वेषां दृढतन्त्राणां साधनं योगिनो विदुः ॥ ५ ॥

मूलबंध १ उड्डीधानबंध २ जालंधरबंध ३ ये श्रेष्ठ हैं मत्स्येन्द्रादि महासिद्ध वसिष्ठादिमुनि इन्हें सेवन करतेहैं दृढके उपायोंके सिद्धिकों प्रगट करतेहैं इससे भोरक्षादि सिद्ध इन्हें जानतेहैं ॥ ५ ॥

यत्किंचित्स्त्रवते चन्द्रादमृतं दिव्यरूपिणः ।

तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः ॥ ६ ॥

तालूके मूलमें स्थित दिव्यरूप चंद्रमासे कुछ रु अमृत स्रवित होताहै उसे नाभिस्थित अग्निरूप सूर्य ग्रस्त करलेताहै तब देहको वृद्धावस्था होतीहै ॥ ६ ॥

तत्रास्तिकरणं दिव्यं सूर्यस्य मुखवञ्चनम् ।

गुरुपदेशतो ज्ञेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः ॥ ७ ॥

इसप्रकरणमें उक्तसूर्यके मुखवंचना अर्थात् जिससे उक्त अमृत सूर्यके मुखमें न पड़े यह युक्ति कहाहै तथा विपरीतवर्णी मुद्राभी (जो आगे कहेंगे) इसके उपयोगी है, ये सर्व गुरुमुखसे जानेजातेहैं बिना गुरु कोटीसंख्याक शास्त्रके अर्थमेंभी न जानेजाते ॥ ७ ॥

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्बद्धम् ।

अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते ॥ ८१ ॥

अपानवायु ऊपर खींचके प्राणवायुसे योजित करना. पाद की एड़ीसे गुदा, एवं लिंगके मध्य योनिरस्थानको दृढ़ अचेतके गुदद्वारको दृढ़ संकुचित करना जिससे अपानवायु बाहर न निकसे इसप्रकार मूलबंध होता है ॥ ८१ ॥

अपानप्राणयोरैक्यात् क्षयो मूत्रपुरीषयोः ।

युवा भवति वृद्धोपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ८२ ॥

अपान और प्राणवायुका ऐक्य कर जो निरंतर मूलबंधका अभ्यास करता है उसके मलमूत्र क्षय होते हैं, और बूढ़ा भी जवान् होजाता है ॥ ८२ ॥

‘गोरक्षसंहितामें दशमुद्राओंमेंसे महामुद्रा १ सेचरी २ उड्डीयान ३ जालंधरबंध ४ मूलबंध ५ मुख्य कही हैं अन्य महाबंध १ मद्रावेध २ विपरीतकरणीमुद्रा ३ वज्रोली ४ शक्तिचालन ५ ये पांच इसी शतकमें साधारणप्रकार पूर्वही कह आये हैं तथापि विशेष प्रकटताकेलिये मैं उन्हें ग्रंथांतरमतसे भी लिखता हूँ—

॥ तत्र प्रथमं महाबन्धः ॥

पार्णिवामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।

वामोरूपारि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा ॥ १ ॥

वामपादको एड़ीसे योनिस्थानको रोषके दक्षिणपाद उसके ऊपर स्थापन करे अर्थात् मूलबंधकरणं ॥ १ ॥

पूरयित्वा ततो वायुं हृदये चिबुकं दृढम् ।

निष्पीड्य वायुमाकुञ्च्य मनोमध्ये नियोजयेत् ॥ २ ॥

तब जालंधरबंधकरके वायुको पूरकर मनको मध्यनाडी सुपुष्णामें प्रवृत्त करे ॥ २ ॥

धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदनिलं शनैः ।

सव्याङ्गे तु समभ्यस्य दक्षाङ्गे पुनरभ्यसेत् ॥ ३ ॥

यथाशक्ति कुंभक करं मंद २ रेचन करे ऐसेही वामांगमें अभ्यास करे दोनों अंगोंके अभ्यासकी संख्या समान करे ॥ ३ ॥

अयं तु सर्वनाडीनामूर्ध्व गतिनिरोधकः ।

अयं खलु महाबन्धो महासिद्धिप्रदायकः ॥ ४ ॥

यह समस्तनाडियोंकी ऊपरकी गतिरोधक महामिद्धिदायक महाबंध है ॥ ४ ॥

कालपाशमहाबन्धविमोचनविचक्षणः ।

त्रिवेणोसंगमं धत्ते केदारं प्रापयेन्मनः ॥ ५ ॥

मृत्युपाशको काटनेवाला है. इडा, पिंगला, सुपुष्णा तीनोंके संगम (त्रिवेणी) धारणकर मनको (केदार) भुक्रुटीशिवस्थानमें प्राप्तकरे ॥ ५ ॥

रूपलावण्यसंपन्ना यथा स्त्री पुरुषं विना ।

महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलो वेधवर्जितौ ॥ ६ ॥

जैसे कांति, गुण, शोभायुक्त स्त्री पुरुषविना व्यर्थ है ऐसेही महावेधविना महामुद्रा और महाबंध निष्फल है इसलिये अब महावेध कहतेहैं ॥ ६ ॥

॥ अथ महावेधः ॥

महाबन्धस्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकधीः ।

वायूनां गतिमावृत्य निवृत्तं कण्ठमुद्रया ॥ १ ॥

एकाग्रबुद्धि करके योगी महावेध इसप्रकार करे कि, नासापुटसे पूरक करके जालंघरबंधकर वायुका ऊर्ध्वगतिको रोक कुंभक करे ॥ १ ॥

समहस्तयुगो भूमौ स्फिचौ संताडयेच्छनैः ।

पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः ॥ २ ॥

दोनों हाथोंके हथेलीसमान पृथ्वीमें धरके पादकी एड़ी योनिस्थानमें दृढ़ लगाय हाथोंके सहारे पृथ्वीसे कुछेक शरीर उठावे (परंतु जैसे मूलबंध मुद्रा न खुले) फिर मंद मंद पृथ्वीमें अपने शरीरासन त्रिचको ताडन करे इससे वायु इडा-पिंगला-को उलंघनकर सुषुम्णामें प्राप्त होताहै (इस मुद्रामें स्वानुभवसे तथा हगिगुह्यादिष्ट मार्गसे कहताहूँ कि शरीर पृथ्वीसे उठाकर पृथ्वीमें ताडन करनेमें उक्त मुद्रा दृढ़ नहीं रहसकती यदि बलसे रक्खाती तो मूलबंध बिगड़जाताहै इससे सुगम तो पद्मासनसे यह कार्य सुवर्षक होताहै औरभी सुप्तीता यह है कि हाथोंके जोरसे शरीर उठानेमें मूलबंध सुगमताहासे होजाताहै ॥ २

सोमसूर्याग्निसंबन्धो जायते चामृताय वै ।

मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत् ॥ ३ ॥

इस विधिसे सूर्यचंद्रमा अग्न्यात्मका इडा पिंगला सुषुम्णा का संयोग मोक्षके हेतु हैं ऐसे होनेमें (मराहुवा जैसा)

(५२)

गोरक्षपद्धति-

स्था होतीहै तब नासिकापुटमें मंद २ रेचन करे ॥ ३ ॥

महावेधोयमभ्यासान्महासिद्धिप्रदायकः ।

वलीपलितवेपन्नः सेव्यते साधकोत्तमैः ॥ ४ ॥

इस महावेधके अभ्यास करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धि मिलतीहैं (वली) बुढ़ापेमें मुस्रपर सलवटें पहनी. (पलित) बाल श्वेत होने. (कंष) बुढ़ापेमें शरीर कांपना ये उक्त अभ्यासीको नहींहोते ॥ ४ ॥

एतन्नयं महागुह्यं जरामृत्युविनाशनम् ।

वह्निवृद्धिकरं चैव ह्यणिमादिगुणप्रदम् ॥ ५ ॥

ये महामुद्रा, महाबंध, महावेध, गोप्य हैं बुढ़ापे तथा मृत्यु-कों दूर करतेहैं जाठराग्निको बढ़ातेहैं अष्ट सिद्धि देतेहैं ॥ ५ ॥

अष्टधा क्रियते चैव यामे यामे दिने दिने ।

पुण्यं संभारसंधायि पापौघभिदुरं सदा ।

सम्यक्शिक्षावतामेवं स्वल्पं प्रथमसाधनम् ॥ ६ ॥

आठों प्रहरमें ८ ही वार इनका अभ्यास करे ये ३ पुण्यराशिको बढ़ातेहैं पापसमूहको वज्रके समान सूंकतेहैं शिक्षावान् पुरुषको इसप्रकार दिन २ प्रहर २ में थोडा २ करके अभ्यास करनागोप्य है ॥ ६ ॥

॥ अथ विपरीतकरणमुद्रा ॥

उर्ध्वं नाभेरधस्तालोरुर्ध्वं भानुरधः इक्षी ।

करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ ७ ॥

अब विपरीतकरणी मुद्रा कहतेहैं कि, ऊपरको नाभि नीचे तालूकरके नाभिस्थ सूर्य ऊपरको भ्रुकुटिस्थ चंद्रमा नीचेको होजाताहै इससे चंद्रामृत सूर्यरूप अग्निमें नहीं पडनेपाता यह विपरीतकरणीमुद्रा है यहां ग्रंथकर्त्ताने उदाहरण कुछेक लिखकर लिखा गुरुलक्ष्यपर निर्भर छोडदिया, इसलिये मैं (भाषाकार) अपने अनुभव एवं हरिगुरुपदिष्टमार्गसे लिखताहूं कि, दोनहूं पैरोंसे पद्मासन बांधकर दोनहूं हाथ और शिर (चोटी) पृथ्वी लगाय, उक्त पद्मासनको ऊपर अंतरिक्षमें खडा करे अभ्यास हुऐमें कभी तो उस पद्मासनको खोल पाँव आकाशमें लंबे करे कभी फेर बैस्तेहमें पद्मासन करे हाथ और शिरके सहारे उलटा खडा रहै तब यह मुद्रा होगी अभ्याससे सुगम होजातीहै ॥ १ ॥

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्द्धिनी ।

आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः साधकस्य च ॥ २ ॥

जो इस मुद्राका नित्य अभ्यास करताहै उसकी जठराग्नि बढतीहै, उस साधकको आहार बहुत (यथेच्छ) करनाचाहिये ॥ २ ॥

अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात् ।

अधःशिराश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने ॥ ३ ॥

इस मुद्राका अभ्यासी यदि भोजन अल्प करे तो जाठराग्नि प्रज्वलित होकर देहको फूकतीहै, अब किया है कि पहिले दिन शिर पृथ्वीमें रखकर पैर ऊपरको क्षणमात्र बरै ॥ ३ ॥

क्षणाच्च किंचिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने ।

वलितं पलितं चैव पण्मासोर्ध्वं न दृश्यते ।

याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसत्स तु कालजित् ॥४॥

फिर प्रतिदिन एक एक क्षण बढ़ायके अभ्याससे साधे तो सिद्धि भयेमें बलीपलित छः महीनेसे दूर होजातेहैं जो प्रतिदिन एक २ प्रहरपर्यंत इसका करताहै वह कालमृत्युको जीतताहै ४

॥ अथ वज्रोली ॥

स्वेच्छया वर्तमानोपि योगोक्तैर्नियमैर्विना ।

वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभजनम् ॥१॥

अब वज्रोलीमुद्रा कहतेहैं कि जां योगोक्त नियम नहीं जानताहुवा भी अपनी इच्छासे वज्रोलीको जाने वह अणिमा सिद्धि पाताहै ॥ १ ॥

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यम्य करयचित् ।

क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी ॥ २ ॥

इस मुद्रामें हरकिसीको दो वस्तु दुर्लभ हैं विशेषतः ये २ अवश्य चाहियें. वज्रोलीपर्यसंगमोत्तर दुग्धपान, एवं वशवर्तिनी स्त्री २ उपयोगी हैं ॥ २ ॥

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ।

पुरुषोप्यथवा नारी वज्रोलीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

संगमकरके मंद मंद क्षरितवोर्यको इंद्रियसंकोचनकरके ऊपर खेंचनेके अभ्यास सिद्ध हुयेमें वज्रोलीमुद्राकी सिद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ३ ॥

यन्त्रतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे ।

शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसंचारकारणात् ॥ ४ ॥

इसकी पूर्वांगक्रिया कहें कि चांदी वा कांचकी १४ अंगुल खोखरी शलाका सच्छिद्र करे जो १२ अंगुल सरल २ अंगुल तिरछी रहे उसे लिंगछिद्रमें प्रतिदिन २।२ अंगुल प्रवेश कर एक क्षिणसे फूंककर वायु प्रवेश करते १ बारह दिनमें २४ अंगुल प्रवेश करे इससे इंद्रियमार्ग शुद्ध होताहै तब इस मार्गसे जलके आकर्षणका अभ्यास करे अभ्यास सिद्ध हुयेमें वीर्यका आकर्षण करे तो सिद्धि होतीहै, जिसको खेचरी एवं प्राणजय सिद्ध हों उसको वज्रोलोसिद्धि होताहै ॥ ४ ॥

नारीभगे पतद्विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत् ।

चलितं च निजं विन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥ ५ ॥

स्त्रीसंयोगमें जब बिंदु (वीर्य) शरीरसे चलायमान होतजी उसे उक्तान्यासे ऊपरको खींचलेवै अथवा जब जगमें गिरपड़े तब स्त्रीके रजसहित बिंदुको आकर्षण कर ऊपरको चढ़ायकर स्थापन करे ॥ ५ ॥

एवं संरक्षेयद्विन्दुं मृत्युं जयति योगवित् ।

मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात् ॥ ६ ॥

याप्रकार जो बिंदुकी रक्षा करताहै सो योगी मृत्युको जीतताहै बिंदुके पतनसे मृत्यु उसकी रक्षासे अमरत्व होतेहैं इसलिये इस विधिसे बिंदुको स्थापन करे ॥ ६ ॥

सुगन्धो योगिनो देहे जायते विन्दुधारणात् ।

यावद्विन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ॥ ७ ॥

उक्त अभ्यासीके शरीरमें बिंदुधारणसे सुगंधि प्रकट होती है और जबलौं देहमें बिंदु स्थित है तबलौं कालभय नहीं होती ॥ ७ ॥

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायत्तं च जीवितम् ।

तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥

वीर्य चित्तके आधीन है. चित्तके चलायमान होनेसे वीर्य चलायमान और स्थिरतासे स्थिर होता है एवं शुक्रके आधीन जीवित हैं. इसके स्थिरतासे जीवित स्थिर और चलायमान होनेसे मरण होता है, इसलिये शुक्र और मनकी रक्षा करनी मुख्य है ॥ ८ ॥

ऋतुमत्या रजोप्येवं बीजं विन्दुं च रक्षयेत् ।

भेदेणाकर्षयेदूर्ध्वं सम्यग्भ्यासयोगवित् ॥ ९ ॥

ऐसेही रजोवती स्त्रीके रजको बिंदुसहित आकर्षणके ऊपर-कों खींचके स्थापन करे ऐसे वज्रोलीके अभ्यास करनेवाला योगवेत्ता होता है ॥ ९ ॥

‘एक प्रकारके भेद वज्रोलीके सहजोली, अमरोलीभी हैं अतः प्रथम सहजोली कहते हैं’—

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्या भेद एकतः ।

जले सुभस्म निक्षिप्य दग्धगोमयसंभवम् ॥ १ ॥

जो वज्रोलीके फल वही सहजोली, अमरोलीवे भी है इसलिये येभी उसीके भेद हैं. गोबरके (कंडे) गोपठे जलायके भस्म जलमें मिलावे ॥ १ ॥

वज्रोलीमैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसोः स्वाङ्गलेपनम् ।

आसीनयोः सुखेनैव मुक्तव्यापारयोः क्षणात् ॥ २ ॥

वज्रोली अर्थ मैथुन करके क्षणमात्र सुखसे बैठके व्यापार छोड़के उक्त भस्म जलमें मिलाय स्त्रीपुरुष अपने २ सर्वांग लेपन करें ॥ २ ॥

सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धया योगिभिः सदा ।

अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोपि मुक्तिदः ॥ ३ ॥

यह मत्सेन्द्रादि योगीश्वरोंने सहजोली कहाहै यह योग शुभकारक है, अन्यत्र साधनाओंमें जहां भोग तहां मोक्ष नहीं जहां मोक्ष तहां भोग नहीं इस मुद्राके अभ्यासमें भोगसहित मोक्षर्था है ॥ ३ ॥

अयं योगः पुण्यवतां धीराणां तत्त्वदर्शनाम् ।

निर्मत्सराणां सिद्धयेत नतु मत्सरशालिनाम् ॥ ४ ॥

जो योगी पुण्यवान्, धैर्यवान्, तत्त्वदर्शी, और निर्मत्सरी हैं उनको सिद्ध होताहै जो मत्सरी (अन्यशुभदेवी) हैं उनको सफल नहींहोता ॥ ४ ॥

“अब दूसरा भेद व अमरोली कहतेहैं”—

पित्तोत्थणत्वात्प्रथमाम्बुधारां

विहाय निःसारस्तयान्त्यधाराम् ।

निपेव्यते झीतलमध्यधारा

कापालिके सण्डमतेऽमरोली ॥ १ ॥

शिवांबुके प्रथमधारा पित्तके उष्णतासे तथा अंत्यधारा निःसारतासे त्यागकर निर्विकार मध्यधाराको ग्रहण कर सेवन करते हैं यह योगाभिमत कापालिकी क्रिया है इसे अमरोली कहते हैं यद्वा (कापालिक) कनफटे जोगियोंका (जिसे खंडमत कहते हैं) यह कर्म विशेषतः इष्ट है ॥ १ ॥

अमरीयं पिवेत्रित्यं नस्यं कुर्वन् दिने दिने ।

वज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगमरोलीति कथ्यते ॥ २ ॥

जो पुरुष अमरवारुणी (जो खेचरी प्रकरणमें कहते हैं) का पान करते हैं एवं नाशनी अमरवारुणीका लेते हैं तथा प्रतिदिन वज्रोलीका अभ्यास करें सोही कापालिकी अमरोली कहते हैं ॥ २ ॥

अभ्यासान्निःसृता चान्द्री विभूत्या सह मिश्रयेत् ।

धारयेदुत्तमाङ्गेषु दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ३ ॥

अमरोलीके अभ्याससे निःसृत चंद्रसुधाको पुरोक्त ॥ २ ॥ में मिलापके उत्तमअंग,—मस्तक, नेत्र, स्कंध, हृदय, गुजादिमें धारणकरे तो भूत, भविष्य, वर्तमान देखनेयोग्य दिव्यदृष्टि होजाती है ॥ ३ ॥

॥ अथ स्त्रीणां वज्रोली ॥

पुंसो विन्दुं समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाट्वात् ।

यदि नारी रजो रक्षेद्वज्रोल्या सापि योगिनी ॥ १ ॥

अब स्त्रियोंको वज्रोलीसाधन कहते हैं कि, जो स्त्री अभ्यासको चतुराईसे पुरुषके बिंदुको खींचके अपने रजकी वज्रोली-मुद्रा करके रक्षा करे वहभी योगिनी कहाती है ॥ १ ॥

तस्याः किंचिद्रजो नाशं न गच्छति न संशयः ।

तस्याः शरीरे नादश्च बिन्दुता मेन गच्छति ॥ २ ॥

उसके रजका नाश (पतन) निस्संदेह अल्पभी नहीं होता
तथा शरीरमें नादभी उत्पन्न होता है चंद्ररूप बिंदु सुर्यरूप रजके
बाहर संयोगसे सृष्टि (गर्भ) होती है जब अभ्याससे भीतरही योग
होय तो योगसिद्धि होती है परमपद मिलता है इनके संयोगमें
समस्त देवता स्थित रहते हैं ॥ २ ॥

स बिन्दुस्तद्रजश्चैव एकीभूय स्वदेहगौ ।

वज्रोत्थभ्यासयोगेन सर्वसिद्धिं प्रयच्छतः ॥ ३ ॥

रज, बिंदु वज्रोत्थके अभ्याससे देहमें प्राप्त होनेपर सर्व
सिद्धि देते हैं ॥ ३ ॥

रक्षेदाकुञ्चनादूर्ध्वं मा रजः साहि योगिनी ।

अतीतानागतं वेत्ति स्वेचरी च भवेद्भुवम् ॥ ४ ॥

जो स्त्री भगको आकुंचन करते करते रजको ऊपर शरीरमें
चढ़ाय रक्षा करे वह योगिनी होती है भूत, भविष्य, वर्तमान
जाने अंतरिक्षमें बिच रहनेहारी बैमानिकगति मिलती है ॥ ४ ॥

देहसिद्धिं च लभते वज्रोत्थभ्यासयोगतः ।

अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेपि मुक्तिदः ॥ ५ ॥

वज्रोत्थके अभ्यासयोगसे (देहसिद्धि) रूप, लावण्य, बल,
वज्रसंहननभाव मिलते हैं. यह योग पुण्य देनेवाला तथा विप-
यभोग भोगनेमेंभी मुक्ति देता है ॥ ५ ॥

इन्में दशमगतिचालनमुद्रा प्रथम अजपा मायत्रीके उपरांत

(६०)

गोरक्षपद्धति-

कह आये हैं. अब इन १० का माहात्म्य कहते हैं—

इति मुद्रा दश प्रोक्ता आदिनाथेन शम्भुना ।

एकैका तासु यमिनां महासिद्धिप्रदायिनी ॥ १ ॥

ये दश (१०) मुद्रा आदिनाथ (शिव) ने कही हैं इनमें एक एक मुद्रा योगीको अणिमादि देनेवारी हैं ॥ १ ॥

उपदेशं हि मुद्राणां यो दत्ते सांप्रदायिकम् ।

स एव श्रीगुरुस्त्वामी साक्षादीश्वर एव सः ॥ २ ॥

जो योगियोंको (सांप्रदायिक) गुरुपरंपराप्राप्त इन मुद्राओंका उपदेश देवै वही सर्व गुरुनते श्रेष्ठ, स्वामी, साक्षात् ईश्वर हैं ॥ २ ॥

तस्य वाक्यपरो भूत्वा मुद्राभ्यासे समाहितः ।

अणिमादिगुणैः सार्द्धं लभते कालवञ्चनम् ॥ ३ ॥

इनके उपदेशकर्ता गुरुके आसन, कुंभक, आहार, विहार, चेष्टादि वाक्योंमें आदरपूर्वक ग्रहणकर तत्पर रहै तो अणिमादि सिद्धियोंको जीतकर कालमृत्युको जीते ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रणवाभ्यासः ॥

पद्मासनं समारुद्धा समकायशिरोधरः ।

नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ॥ ८३ ॥

अब प्रणवके अभ्यासकी विधि कहते हैं कि पंजांत स्थलमें बैठकर दृढ़ पद्मासन बांधके शरीर पंठ शिर सम (सरल) करके नासाग्रदृष्टि निरंतर करके प्रणव जप करे ॥ ८३ ॥

भूर्भुवःस्वरिमे लोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः ।

यस्य मात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८४ ॥

जिस प्रणवके अकार उकार मकार तीन वर्णमें भुः १
भुवः २ स्वः ३ ये लोक चंद्रमा १ सूर्य २ अग्नि ३ देवता रह-
ते हैं वह प्रणव परमकारणरूप ज्योतिर्मय चैतन्य ॐ कारस्वरु-
प है ॥ ८४ ॥

त्रयः कालास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकस्त्रयः स्वराः ।

त्रयो देवाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८५ ॥

जिस प्रणवमें भूत, वर्तमान, भविष्य ३ काल ऋक्, यजुः,
साम तीनहूँ वेद. स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ३ लोक उदात्त, अनुदात्त,
स्वारित् ३ स्वर. ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीन देवता रहते हैं. वह
प्रणव (ॐकार) स्वरूप परब्रह्म ज्योतिस्वरूप है ॥ ८५ ॥

क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी ।

त्रिधा शक्तिः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८६ ॥

जिस प्रणवके अ, उ, म, तीन मात्रा अक्रिया, इच्छा,
ज्ञान, शक्ति त्रैलोक्यके ब्रह्मणी, रुद्राणी, वैष्णवी, ये शक्ति
रहती हैं सो प्रणव ओंकारस्वरूप परब्रह्मज्योति है ॥ ८६ ॥

अकारश्च उकारश्च मकारो विन्दुसंज्ञकः ।

त्रिधा मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८७ ॥

निलोकात्मा अकार उकार और बिंदुस्वरूप मकार तीनहूँ
मात्रा रहती हैं जिसमें ऐसा ब्रह्मज्योतिस्वरूप प्रणव है ॥ ८७ ॥
वचसा तच्चपेद्वीजं वपुषा तत्समभ्यसेत् ।

मनसा तत्स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८८ ॥

इस प्रणवको सकल जगत्कारण भूतभावना करके वचनसे जप करना शरीरसे सिद्धासनादिसे समुणव्रह्मकी भावना करके प्रणवार्थ समझ अभ्यास करना तथा मनसे परंब्रह्मस्वरूप प्रकाश चैतन्य समझके सर्वदा स्मरण करना ॥ ८८ ॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि योजयेत्प्रणवं सदा ।

न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ८९ ॥

जो योगी बाह्याभ्यंतर शौचयुक्त वा बाह्यशौचमात्र यद्वा जैसे तैसे होकर प्रणवको अर्थ समझ अभ्याससे जप करताहै उसको शारीरिकपाप स्पर्श नहीं करते. जैसे कमलदल जलमें रहताहै परंतु जल उसके पत्रको स्पर्श नहीं करसकता ऐसेही उक्त विधिका प्रणवाभ्यासीभी निर्लेप रहताहै ॥ ८९ ॥

॥ अथ प्राणायामप्रकारः ॥

चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् ।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ ९० ॥

प्राणवायुके निश्वासोच्छ्वास होतेरहतेमें बिंदुभी चलायमान होताहै जो प्राणवायु स्थिर होगया तो बिंदु स्थिर होजात है जब प्राणायामसे प्राण वायु स्थिर होगया तो योगी चिरकाल योगाभ्यामसे समर्थ होताहै दीर्घजीवी तथा ईश (शिव) भावको प्राप्त होजाताहै. इसलिये योगीको वायुनिरोध करना मूल्य है ॥ ९० ॥

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवं न मुञ्चति ।

मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ९१ ॥

जबलौ शरीरमें वायु स्थिर रहता है तबलौ जीव शरीरको नहीं-
छोड़ता जब प्राणवायु शरीरसे निकल जाता है तो उसी अव-
स्थाको मरण कहते हैं जीवन मरण प्राण वायुके आधीन है इस
लिये प्राणवायुका रोधन अवश्य विधिसे करना चाहिये ॥ ९१ ॥

यावद्ब्रह्मो मरुद्देहे यावच्चित्तं निरामयम् ।

यावद्दृष्टिर्भुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः ॥ ९२ ॥

जबतक प्राणवायु कुंभकसे देहमें स्थिर है तथा जबतक
चित्त विषयवासना त्याग अंतःकरण ईश्वराकार निर्विकार है
और जबतक भ्रूमध्यमें दृष्टि निश्चल है तबतक कालकी भय
नहींहोती ॥ ९२ ॥

अतः कालभयाद्ब्रह्मा प्राणायामपरायणः ।

योगिनो मुनयश्चैव ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ९३ ॥

जिसकारण जीवनमरण प्राणवायुके आधीन है इसी हेतु
ब्रह्मा एवं सनकादिक सिद्ध, दत्तात्रेयादि मुनि, प्राणायामके सा-
धनमें तत्पर हैं अन्य योगियोंकोभी इस अभ्याससे कालकी भ-
य नहींहोती इस हेतु प्राणायाम साधन करना योग्य है ॥ ९३ ॥

पद्त्रिंशदङ्गुल्यो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः ।

वामे दक्षिणमार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते ॥ ९४ ॥

प्राणवायु अग्नवायुरूप हंस इडापिंगलाके मार्गसे (३६) छत्ती-
स अंगुल बाहर निकलता है इसहेतु 'बहिः प्रयाणं कुरुते प्राणः'
उक्तवायु प्राण कहाता है प्राणापानवायुरूप हंस है और नहीं ९४

शुद्धिमेति यदा सर्वनाडीचक्रं मलाकुलम् ।

तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥ ९५ ॥

जब शरीरके मलसे व्याप्त नाडीजाल, नाडीशोधन प्राणायामके प्रभावसे शोधके शुद्ध निर्मल होताहै तब योगाभ्यासोपयोगि प्राणवायुको थामनेकी सामर्थ्य योगीको होतीहै अन्यथा नहीं ॥ ९५ ॥

॥ अथ नाडीशोधनप्राणायामविधिः ॥

वद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।

धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत् ॥ ९६ ॥

नाडीशोधन करनेवाले प्राणायामकी विधि कहतेहैं कि एकांतमें स्थूल और कोमल आसनमें बैठकर पद्मासन बांधे तब (चंद्रनाडी) इडासे १२ संख्या प्रणव जप करते मंद मंद पूरक तथा १६ संख्यासे दोनहूँ ओर थामके कुंभकमें चंद्रमंडलका ध्यान करना और १० संख्यासे (सूर्यनाडी) पिंगलासे मंद मंद रेचन करे यह चंद्रांग (वामांग) प्राणायाम है ९६

अमृतदधिसंकाशं गोक्षीरधवल्लोपमम् ।

ध्यात्वा चन्द्रमसो विभ्वं प्राणायामी सुखी भवेत् ॥ ९७ ॥

चंद्रांगप्राणायाममें दधि, दुग्ध समान अतिशुक्लवर्ण अमृतस्वरूप चंद्रमाका कंठ तथा नाभिमें ध्यान करनेसे आनंदका अनुभव होकर सुख मिलताहै ॥ ९७ ॥

दक्षिणे श्वासमाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ।

कुम्भयित्वा विधानेन पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ ९८ ॥

भाषानुवाद । श० १ . (६५)

(सूर्यनाडी) पिंगलामार्गसे प्राणवायु १२ संख्यासे प्रणवजपसहित पूरक १६ संख्यासे कुंभकमें आदित्यमंडलका ध्यान करना और १० संख्यासे प्रणवजप करके चंद्रनाडी इडामार्गसे मंद २ रेचन करना यह दक्षिणांग (सूर्यांग) प्राणायाम है ॥ ९८ ॥

प्रज्वलज्ज्वलनज्वालापुञ्जमादित्यमण्डलम् ।

ध्यात्वा नाभिस्थितं योगी प्राणायामी सुखी भवेत् ९९

सूर्यांग प्राणायाममें कुंभकविषये जाज्वल्यमान अग्निज्वालासमुदायसमान अग्निमय सूर्यमंडलको अपने नाभिकमलमें ध्यानकरके जो योगी प्राणायाम करे तो आनंद पाताहै ॥ ९९ ॥

प्राणांश्चेदिडयापि चेत्परिमितं भूयोन्यया रेचयेत्

पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो वद्धा त्यजेद्भ्रामया ।

सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिम्बद्वयं ध्यायतां

शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥

॥ १०० ॥

उक्त ४ श्लोकका अर्थ सूक्ष्मसे पुनः कहतेहैं कि यदि प्राणवायुको वामनासापटसे १२ प्रणव जपसे पूरक १६ जपसे चंद्रमंडल ध्यानसहित कुंभक और १० जपसे रेचन सूर्यनाडीसे करना यह एक (१) प्राणायाम हुवा पुनः दक्षिणाडीसे १२ जपि पूरक १६ से सूर्यमंडल ध्यानसहित कुंभक और १० से रेचन करना दूसरा प्राणायाम हुवा. पुनः वानसे पूरक दक्षिणसे रेचक करके तीसरा प्राणायाम,

(६६) . गोरक्षपद्धति-

इसीप्रकार चंद्रांग पूरकके कुंभकमें चंद्रबिंब प्राणवायुस्वरूपका और सूर्यांग पूरकके कुंभकमें सूर्यबिंब अपानवायुस्वरूपका ध्यान करनेवाले योगीके समस्त नाडीजाल तीन (३) महाने उपरांत शुद्ध (निर्मल) होतेहैं यह नाडीशोधनका उत्तम प्रकार कहाहै जो संयमसे रहके धौती १ नेति २ नौली ३ यस्ती ४ त्राटक ५ भस्त्रा ६ पट्कर्ममें परिश्रम न करे तौमी इनही प्राणायामोंके अभ्याससे उनका उत्कृष्टतय संपादित होजाताहै जैसे कहाजाती है कि “प्राणायामैरेव सर्वं प्रशुष्यन्ति मला इति । आचार्याणां तु केषांचिदन्यत्कर्म न संमतम्” अर्थात् प्राणायामहीसे नाडीमल शुद्ध होजाताहै इसलिये याज्ञवल्क्यादियोंके अन्य धात्यादि पट्कर्म संमत नहींहै ॥ १०० ॥

॥ ग्रन्थान्तरे ॥

प्रातर्मध्यंदिनं सायमर्द्धरात्रे च कुम्भकान् ।

शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ १ ॥

अरुणोदय सूर्योदयपर्यंत ३ घटी प्रातःकाल दिनके पांच विज्ञाग कर मध्यभाग मध्याह्न, सूर्यास्तसे ३ घटी आगे पीछे 'सायं' संध्याकाल और अर्द्धरात्रिमें २ मुहुर्त्त निशीथ काल हो-ताहै इन चारोंमें प्रत्येकमें ८०।८० प्राणायाम करना अर्द्धरा-त्रिमें न करसके, तीनों कालमें अवश्य अभ्यास करना, चारों स-मयके ३२० और ३ समयके २४० प्राणायाम होतेहैं ॥ १ ॥

कनीयसि भवेत् स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे ।

उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निबन्धयेत् ॥ २ ॥

जिसमें प्रस्वेद आवै वह कनिष्ठ, जिसमें कंप हो वह मध्यम है, जिसमें वायु ब्रह्मरंध्रमें प्राप्त हो सो उत्तम कहाताहै इससे योगी निरंतर वायुका अभ्यास करे और कुछ कम ४२ विपल कुंभक रहै सो कनिष्ठ ८४ से मध्यम, १२५ में उत्तम प्राणायाम काल कहतेहैं जब प्राणायाम स्थिर होजाय तब प्राण ब्रह्मरंध्रको प्राप्त होताहै तहां २५ विपला स्थिर रहै तब प्रत्याहार २५ पलापर्यंत रहै तो धारणा तथा ६ घटी रहै तो ध्यान और बारह (१२) दिन रहै तो समाधि होतीहै ॥ २ ॥

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् ।

दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥ ३ ॥

प्राणायामश्रमसे जो पसीना आवै उसे सर्वांगमें खूब मले इससे गात्र लघु और दृढ होतेहैं अर्थात् जढताका अभाव होताहै ॥ ३ ॥

अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ।

ततोभ्यासे दृढीभूते न तादृङ्नियमग्रहः ॥ ४ ॥

अभ्यासकालमें दूध, घृत भोजन करे जब केवल कुंभ-काभ्यास दृढ होजाय तब उक्तनियमका कुछ आग्रह नहीं ॥ ४ ॥

यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तथा चिह्नानि बाह्यतः ।

कायस्य कृशता कान्तिस्तदा जायेत निश्चितम् ॥ ५ ॥

जब नाडीशुद्धि होजातीहै तो बा बाहर चिह्न देहकी कृशता, कातिवर्द्धनआदि निश्चय देखनेमें आतेहैं बहुतकालस-

(६८)

गोरक्षपद्धति-

मं कुंभक धारण करनेसे जाठराग्निप्रदीप्ति, नादकी प्रकटता और निरोगिता होतीहै ये सर्व नाडीशुद्धिके गुण हैं ॥ ५ ॥

यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।

नादाक्षिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधने ॥१०१॥

इति गोरक्षशास्त्रे प्रथमशतकम् ॥१॥

नाडिशोधन हुयेमैं अपने समझेयोग्य मंत्र-जप कालपर्यंत प्राणवायुके धारणसामर्थ्य होतीहै उदरान्नि प्रदीप्त स्पष्टतर नादका श्रवण और नैरुज्यता होतीहै ॥ १०१ ॥

इति महीधरकृतायां गोरक्षयोगशास्त्रभाषाया ससंमहारायां योगाङ्गपूर्वाभ्यासविधिः ॥ १ ॥

धनमें अंत्यंत-कष्टसेभी अभ्यास दृढ नहीं होता इसलिये उनको प्रथम पट्कर्म करके तब प्राणायामका अभ्यास करना योग्य है इसलिये पट्कर्मविधि कहते हैं.

॥ तत्रादौ धौतिः ॥

चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपञ्चदशायतम् ॥

गुरुपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥ १ ॥

चार अंगुल चौड़ी, पंद्रह अंगुल लंबी, बारीक वस्त्र (पग-
ड़ी) की पट्टी थोड़े गरमजलमें भिगाय मुखसे पहिले दिन ए-
क हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन एवं क्रमसे १५
दिनमें पूरी गुरुपदिष्टमार्गसे (घास) निघलजावै ॥ १ ॥

पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत् ।

कासश्वासप्लीहकुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः ।

धौतिकर्मप्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः ॥ २ ॥

उक्त वस्त्र पिछला किनारा मुसमें दांतोंसे दाब ओठोंसे ल-
गाय गौलीकर्म करे इससे छातीमें लगा वस्त्र (उदर) अंतर्हिमें
पहुँच साफ कर्ता है तब थोड़ा २ बाहर निकालडालै यह धौ-
तिकर्म है कास, श्वास, प्लीहा, कुष्ठादि विपरोग, बीस प्रकारके
कफरोग इस धौतिकर्मके प्रभावसे निरसदेह नाश होजाते हैं ॥ २ ॥

॥ अथ वस्तिः ॥

नाभि दग्धे जले पायौ न्यस्तनालोत्कठासनः ।

आधाराकुञ्चनं कुर्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत् ॥ १ ॥

अब वस्तिकर्म कहतेहैं कि नाभिमात्र जलमें उत्कटासन बैठकर छः अंगुल लंबी और अंगुल प्रवेशयोग्य छिद्रवाली बांसकी नली चार अंगुल गुदामें प्रवेशकर गुदा आकुंचन करके पेटमें जल चटाय नौलीकर्म करके बाहर छोड़देवै यह वस्तिकर्म है. धौती वस्ति बिना भोजन कियेकरने न चाहिये तथा इनके उपरंत शीघ्र भोजन करना योग्य है ॥ १ ॥

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः ।

वस्तिकर्मप्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः ॥ २ ॥

वस्तिकर्मसे गुल्म, प्लीह, जलोदर, वात, पित्त, कफसे उत्पन्न सर्वरोग नाश होतेहैं ॥ २ ॥

धात्वान्द्रियान्तःकरणप्रसादं

दद्याच्च कान्तिं दहनं प्रदीप्तिम् ।

अशेषदोषोपचयं निहन्या

दभ्यस्यमानं जलवस्तिकर्म ॥ ३ ॥

जलमें वस्तिकर्मके अभ्याससे शरीरके सप्त धातु रस १ रुधिर २ मांस ३ मेद ४ अस्थि ५ मज्जा ६ शुक्र ७ तथा पांच ज्ञानेंद्रिय पांच क्रमेंद्रिय और अंतःकरणः, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ताप, विक्षेप, शोकादि, मोह, गौरव, आवरण, दीनता, राजसतामसका धर्म सभी निवृत्त होतेहैं. प्रसन्नता कानि बढ़तीहै. जठराग्नि दीप्त होतीहै. वातादिसमस्त दोषोंका नशिरोगिता होतीहै ॥ ३ ॥

॥ अथ नेतिः ॥

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।

मुखाग्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥ १ ॥

अब नेतिकर्म कहतेहैं कि एक वालिस्त मुलायम, एवं ग्रंथिरहित सूत्रका एक किनारा नासिकाके एक पुटमें प्रवेश कर दूरसे पुटकों बंदकर पूरक करे जब कुछ सूत्र ऊपर चढ़े तब मुखश्वास छोड़कर सूत्र बाहर निकाले तब एक नारा मुखके बाहर दूसरा नासिकाके बाहर दोनोंको हाथोंसे पकड़ शनैः शनैः चलातारहे इसे नेतिकर्म सिद्धजन कहतेहैं ॥ १ ॥

कपोलशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी ।

जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च ॥ २ ॥

यह क्रिया कपोल तथा नासिकादियोंके मल दूर कर सूक्ष्मपदार्थदर्शी दिव्यदृष्टि देतीहै और (जत्रू) कंठमूल स्थानसे ऊपरके समस्त रोगरूमूहको शीघ्र शांत करताहै ॥ २ ॥

॥ अथ त्राटकम् ॥

निरीक्षेत्रिश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।

अश्रुसंपातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥ १ ॥

अब त्राटक कहतेहैं कि एकाग्र दृष्टिसे कुछ सूक्ष्म वस्तुको जबलों नत्रोंमें पानी न आवे निरंतर देखतारहे, नेत्रोंमें जल आनेपर छोड़देवे इसे मत्स्येद्रादि त्राटक कहतेहैं, मैं (भाषाकार) समझताहूँ कि सूक्ष्म वस्तुके स्थानमें प्रथम नासाग्र . .

(७२)

गोरक्षपद्धति-

होनेपर भूमध्य देखे तो औरभी अच्छे गुण शीघ्र होंगे ॥ १ ॥

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।

यत्नतस्त्राटक गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ॥ २ ॥

यह हाटककर्म नेत्ररोगनाशक, बल बढ़ानेवाला, आलस्यनिद्रादियोंका (कपाट) केवाड है तन्द्रा और तमांगुणीचित्तवृत्तिके क्रोधादिकोंको दूर करताहै जैसे सुवर्णकी पिटारीको यत्नसे रक्षतेहैं ऐसेही इसकर्मकोभी गोप्य रखते ॥ २ ॥

॥ अथ नौलिः ॥

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः

नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥

अब नौलिकर्म कहतेहैं कि दोनहूँ कंधा नीचे नवाय उदरको दक्षिणवामभागकरके बलके (भ्रमर) भौरेके नाई घुमावै इसे सिद्धलोग नौलि कहतेहैं. अनुभवसिद्ध यहभी है कि दक्षिणवामभागसे घुमायके अभ्यास हुयेमें नीचे ऊपरकोभी चरखीके समान उदरानलको घुमाना चाहिये ॥ १ ॥

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधापिकानन्दकरी सदैव ।

अशेषदोषामयशोपिणी च हठक्रियामौलिरयं हि नौलिः २

॥ अथ कपालभातिः ॥

भस्त्रावच्छोदकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।

कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोपणौ ॥ १ ॥

अब कपालभातिकर्म कहे कि लुहारकी धौकनी (खाल) के नाईं शीघ्र शीघ्र रेचन जो रेचकपूरक करे इसे कपालभाति कहतेहैं इससे बीस प्रकारके कफरोग दूर होतेहैं ॥ १ ॥

पट्कर्मनिर्गतस्थूलकफदोषमलादिकः ।

प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्ध्यति ॥ २ ॥

उक्त पट्कर्मकरके स्थूलभाव कफदोषमलपित्तादि दूर होजातेहैं तब प्राणायाम करे तो विनाशमही योगसिद्धि होतीहै ॥ २ ॥

उदरगतपदार्थमुद्धमन्ति पवनमपानमुदीर्य कण्ठनाले ।
क्रमपरिचयवश्यनाडिचक्रा गजकरिणीति निगद्यते
हठज्ञैः ॥ ३ ॥

अब गजकरणीमुद्राभी प्रसंगसे कहतेहैं कि, अपानवायुकों कठनालमें चढाय उदरगत भुक्तपीतअन्नजलादियोंको निकाले इस अभ्याससेभी नाडिचक्र अपने आधोन (वशीभूत) होता- है इसे हठज्ञयोगी गजकरणी कहतेहैं ॥ ३ ॥

॥ अथ उत्तरार्द्धग्रन्थः ॥

‘पूर्वोक्त प्रकारसे नाडिशोधन हुयेमें यम—नियम—आसन साधके षट्चक्र षोडशाधारका कर्म जानकर नाडिजाल ना-

डिगित वायु ज्ञात हुयेमें चंद्रतारानुकूल शुभदिन शुभ मुहूर्तमें लग्ननवांशादि शुभ साधके एकांतस्थलमें श्रीगुरु गोरक्ष, गणेशका पूजन मंगलपाठ स्वस्त्ययन कराय योगाभ्यासोपदेशक श्रीगुरुको आराधनेसे संतुष्ट कर उन्हींके आज्ञासे योगाभ्यासके आरंभ करना इसमें प्रथम प्राणायामका विस्तार कहते हैं—

प्राणो देहे स्थितो वायुरपानस्य निरोधनात् ।

एकश्चसनमात्रेणोद्धाटयेद्गने गतिम् ॥ १ ॥

प्राणवायु जो देहमें स्थित है और मूलाधारस्थित अपानवायुको ऊपर उठाय रोधकर एकही श्वासमें कुंडलीकरके रुकाहुआ सुपुष्पाद्वारको खोलके सुपुष्पानाडिके चिदाकाशमें ऊर्ध्वगति कराताहै सो प्राणायाम सुगम होताहै ॥ १ ॥

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।

प्राणायामो भवेत्त्रेधा मात्राद्वादशसंयुतः ॥ २ ॥

रेचक, पूरक, कुम्भकके त्रैदिकके प्राणायाम तीन प्रकारका होताहै। बाहरके वायुको अश्वत्तर प्रवेश करना पूरक, वायुको भीतरही रोकना कुम्भक, रुद्धवायुको बाहर निकालना रेचक होताहै प्रणवका स्मरण करनेवाला प्राणायाम है ब्राह्मणको प्रणवका, क्षत्रिय वैश्यको एकाक्षर मंत्रजपका अधिकार है पूरकमें (अ) कारका स्मरणपूर्वक १२ प्रणव जपके चंद्रनाडीसे पूरक (उ) कारके स्मरणपूर्वक चंद्रमंडलका ध्यान सत्रि १८ प्राणजपमें कुम्भक और (य) कारके ध्यानपू-

वर्क १० प्रणवजपसे रेचक करना. यह एक प्राणायाम होता है ॥ २ ॥

मात्राद्वादशसंयुक्तौ दिवाकरनिशाकरौ ।

दोषजालमपघ्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ॥ ३ ॥

प्राणायामके अभ्यास करते २ यदि संयम पूरा न पहुँचे तो नाडी मलिन होजातीहैं इसलिये पुनः नाडीशोधन प्राणायाम करनेहैं कि त्र्यंशंग, सूर्यांग, प्राणायाम, प्राणायानवायुसंयुक्त १२ प्रणवमात्राकरके पूरक चंद्रमंडल-सूर्यमंडलध्यानयुक्त १६ मात्राकरके कुंभक और १० मात्रासे रेचक करके चंद्रसूर्य नाडी मलको नाश करतेहैं ऐसा योगिधेनि जानना ॥ ३ ॥

पूरके द्वादशी कुर्यात्कुम्भके षोडशी भवेत् ।

रेचके दश ॐ काराः प्राणायामः स उच्यते ॥ ४ ॥

प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता ।

उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥ ५ ॥

पूरकमें १२, कुंभकमें १६, रेचकमें १०, मात्रा प्रणवकी यह प्राणायामप्रकार कनिष्ठ है. इससे द्विगुण अर्थात् पू० २४, कुं० ३२, रे० २०, यह मध्यम और पू० ३६, कुं० ४८, रे० ३०, यह उत्तम प्राणायाम है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अधमे चोद्यते घर्मः कम्पो भवति मध्यमे ।

उत्तिष्ठत्युत्तमे योगी ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ६ ॥

कनिष्ठप्राणायाममें (प्रस्वेद) पसीना होतीहै. मध्यममें कंप होताहै. उत्तममें योनिका आधार उठताहै. इसलिये प्राणायामका अभ्यास करना मुख्य है ॥ ६ ॥

वद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम् ।

भ्रूमध्ये दृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वमाकृष्य चापानवायुं प्राणे नियोजयेत् ।

ऊर्ध्वमानीयते शक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

प्राणायामकी विधि कहतेहैं कि एकांतस्थलमें मोटे दलवाला कोमलकंबलादि आसनमें पद्मासन बांधके बैठकर श्रीगुरु एवं शिवकों प्रमाण करे अमृत स्रवित होरहा, ऐसे चंद्रबिंबका ध्यान भ्रूमध्यकरके दोनहूं दृष्टि भ्रूमध्यमें स्थापन करे तदनंतर ब्राह्मण प्रणवका क्षत्रिय वैश्य (ओम्) इति एकाक्षरमंत्रका पूर्वोक्त मात्राके प्रकारसे पूरक, कुंभक, रेचक, प्राणायाम, चं-
द्रांग, सूर्यांग, प्रकारकरके निरंतर करतारहै मूलाधार संको-
चनपूर्वक अपानवायुको ऊपर खींचके प्राणवायुसे ऐक्य करे
तब अपानवायुमिलित प्राणवायुको शक्तिचालनमुद्रासे उठाई-
गई कुंडलिनीको सुषुम्णामार्गसे ऊपरकी चढ़ावे इतने विधि
करनेसे योगी समस्तपापोंसे निर्मुक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

द्वाराणां नवकं निरुद्धञ्च मरुतं पीत्वा दृढं धारितं ।

नीत्वाकाशमपानवाहिसहितं शक्त्या समुच्चालितम् ॥

आत्मस्थानयुतस्त्वनेन विधिवद्विन्यस्य मूर्ध्नि ध्रुवं ।

यावत्तिष्ठति तावदेव महतां संघेन संस्तूयते ॥ ९ ॥

केवल कुंभकप्राणायामका प्रकार कहते कि षण्मुखी-
करक पूरकवायुसे उदर पूर्ण करके ऊपरके ७ नोचेके २ इन
नव द्वारोंको रोकके मूलाधारगत कालाग्नि अपानवायुसहित
शक्तिचालनप्रकारसे प्रबुद्ध होरही कुंडलिनीको ऊपरको उठाए
आज्ञाचक्रसे ऊपर उक्तवायुसे पूर्ण करके स्थिर करे सहस्रकम-
लमें रहते परमात्माका ध्यानसे ज्योतिः प्रत्यक्ष करके यावत्काल-
सम योगी निश्चल होकर परमात्माका ध्यान करताहै, यही काल
योगीका मोक्षसम है. आत्मध्यानतत्पर योगीश्वर सिद्ध इस
योगीकी धन्यवादपूर्वक स्तुति करतेहैं यही परम फल योगका
है ॥ ९ ॥

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः ।

भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥ १० ॥

इस प्रकारका नित्य निरंतर अभ्याससे प्राणायाम करना
अनेक पातकरूपी काष्ठको भस्म करनेवाला अग्नि होताहै. सं-
साररूपी समुद्रसे तारनेवाला महासेतु (बड़ा पुल) योगिजनोंक-
के यही प्राणायाम कहाजाताहै ॥ १० ॥

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम् ।

विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति ॥ ११ ॥

पश्चिमतानादि आसनोंसे शरीरके अशेष रोग नाश होतेहैं
प्राणायामसे समस्त पातक और प्रत्याहारसे मानसिक अनेक
विकार नष्ट होतेहैं ॥ ११ ॥

धारणाभिमतो धैर्य्यं ध्यानाच्चेतन्यमद्भुतम् ।

समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ॥ १२ ॥

धारणासे मनमें धैर्य बढ़नेउत्तर उत्तम ज्ञान मिलताहै
ध्यानसे अद्भुत चैतन्य सर्वशारीरिक ज्ञान मिलताहै समाधिसे
अभिमान त्याग होकर जिसमें पुण्य-पाप लिप्त नहींहोते ऐसा
कैवल्य मोक्ष मिलताहै ॥ १२ ॥

प्राणायामद्विपदकेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ।

प्रत्याहारद्विपदकेन ज्ञायते धारणा शुभा ॥ १३ ॥

धारणा द्वादश प्रोक्ता ध्यानाद्ध्यानविशारदैः ।

ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥ १४ ॥

बारह प्राणायाम करके प्रत्याहारके फल देनेवाला प्रत्याहार
(१२) प्रत्याहार (१४४ प्राणायाम) का धारणाका फल
देनेवारी धारणा (१२) धारणा (१७२८ प्राणायाम) का
प्राणायामरूप ध्यान (१२) ध्यान (२०७३६ प्राणायाम)
का प्राणायामरूप समाधि होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।

तस्मिन् दृष्टे क्रिया कर्म यातायातन्न विद्यते ॥ १५ ॥

समाधिका स्वरूप कहतेहैं, मूलाधारचक्र चतुर्दल कमल
कर्णिकामें सुषुम्णाद्वारेके मंमुख स्पर्शभुलिङ्गके शिखमें देदीप्य,
मान बिंब है बिंदुस्वरूप कंडलिनीका है यह दीप्यमान बिंब
समाधिमें अंत न मिलनेवाला, समस्त जगत् ध्याम करनेवाला-
नम ज्योति कालाग्रिस्वरूप प्रगट होताहै इसके दर्शन, समा-

धिदारा मिलनेसे जन्ममरण नहीं होते कर्ममें लिप्त नहीं होता
कैवल्यका अनुभव होजाता है ॥ १५ ॥

संबद्धासनमेद्रमङ्घ्रियुगलं कर्णाक्षिनासापुटा-
द्वाराण्यङ्गुलिभिर्नियम्य पवनं वक्त्रेण संपूरितम् ।
ध्यात्वा वक्षसि वह्न्यपानसहितं मूर्ध्नि स्थितं धारये-
देवं याति विशेषतत्त्वसमतां योगीश्वरस्तन्मयः ॥ १६ ॥

समाधिकी प्रक्रिया दिखानेहै प्रथम सिद्धासन बांधके दोनहूँ
हाथोंके अंगुष्ठोंसे दोनहूँ कर्णछिद्र, तर्जनीयोंसे नेत्र, मध्यमा-
ओंसे नासिका, और अनामिका २ कनिष्ठिका २ से मुख रो-
कके अधिमुखद्वारसे पूरित करके मूलाधारमें रहनेवाला अग्नि
तथा अपानवायुसहित प्राणवायुको हृदयकमलमें धारण कर
ऊपरको चढाय सहस्रदल कमलमें धारण करना इसप्रकार स-
माधिके अभ्यास करनेवाला योगी अपानवायुसंमिलित प्राण-
वायुमय होकर सर्वद्रष्टा साक्षिभूत अंतरात्माके तुल्यताको प्राप्त
होता है ॥ १६ ॥

गगनं पवने प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ॥

घण्टादीनां प्रवाद्यानां तदा सिद्धिरदूरतः ॥ १७ ॥

उक्त प्रकारसे प्राणवायु जब (गगन) सहस्रदल कमलमें
प्राप्त होजाय तो घंटा नगारेआदि वाद्योंके ध्वनि प्रकट हो-
नीहै इस चिह्नके मिलनेपर योगसिद्धि समीप है जानना ॥ १७ ॥

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।

अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः ॥ १८

यथायोग्य निरंतराभ्यास प्राणायामसे सबरोग क्षय होताहै
ऐसेही अविधि विछिन्नाभ्यासादि प्राणायामसे अनेक रोग
उत्पन्न होतेहैं ॥ १८ ॥

हिक्काकासस्तथा श्वासः शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।

भवन्ति विविधा रोगा पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥ १९ ॥

अयुक्त प्राणायामाभ्याससे वायु विरुद्ध होकर हिचकी,
कास, श्वास, शिरःपीडा, कर्णशूल, नेत्रव्यथाआदि रोग उत्पन्न
करताहै ॥ १९ ॥

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वज्रयः शनैः शनैः ।

अन्यथा इन्ति योक्तारं तथा वायुरसेषितः ॥ २० ॥

जैसे सिंह, व्याघ्र, गज इत्यादि दुष्ट जंतु मंदमंदकरके उन-
के अनुकूल कर्मकर्मसे करके पालकके वशमें रहतेहैं तथापि
किसीसमय थोडाभी उनसे विरोध होनेमें अपनेही पालकको
मारडालतेहैं तैसेही पावनभी युक्तअभ्याससे वशवर्ती होताहै
अयुक्तअभ्याससे रोगादियोंकरके अभ्यासीको अनिष्ट हो-
जाताहै ॥ २० ॥

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत् ।

युक्तं युक्तं च वध्नीयादेवं सिद्धिरदूरतः ॥ २१ ॥

वायु शनैः शनैः रेचन करना जैसे नासाहिद्रके सामने रु-
ईका फोहा रक्ताहुवा न उठे. ऐसेही शनः शनैः पूरकभी कर-
युक्त युक्त पूरक करना जिससे चित्तोद्वेग श्वासात्कटता न

होवै थोडासे क्रम सहनयोग्य बढ़ावना उचित है इससे सिद्धि नजदीक मिलतीहै ॥ २१ ॥

॥ अथ ग्रन्थान्तरे प्राणायामभेदाः-॥

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ।

सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ १ ॥

ग्रन्थांतरसे प्राणायामके भेद कहतेहैं कि (प्राण) शरीरांत-
र्गत वायुके रोधको प्राणायाम कहतेहैं इसके रेचक, पूरक,
कुंभक ३ भेद हैं भीतरसे वायु बाहर छोड़ना रेचक, बाहरसे
वायु उदरमें पूर्णकरना पूरक, और पुरितवायुको घटवत् प्रा-
रण करना कुंभक कहाताहै कुंभककेभी केवल एवंसहित दो
भेद हैं वे केवल योगियोंके संमत है और सहितभी
दोप्रकारका है एक रेचकपूर्वक दूसरा कुंभकपूर्वक पहिला
रेचकप्राणायामसे दूसरा पूरकप्राणायामसे भिन्न नहींहैं
इनके पूरे भेद प्राणायाम प्रकरणसे जानने ॥ १ ॥

यावत्केवलसिद्धिः स्यात्सहितं तावदभ्यसेत् ।

रेचकं पूरकं सुक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ २ ॥

जबलौ केवल कुंभककी सिद्धि हो तबलौ सहितकुंभक सू-
ष्यांग प्राणायाम करके सुपुष्पानके भेदनके पीछे उसके भीतर
घटकासा शब्द हो तब केवल कुंभक सिद्ध होताहै तदनंतर १०।
१० बढ़ावके ८० पर्यंत करे सामर्थ्य हो तो अधिक करे रेचक
तथा पूरककोभी छोड़के जो वायुधारण करना उसे केवल
कुंभक कहतेहैं ॥ २ ॥

प्राणायामोयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः ।

कुम्भके केवले सिद्धे रेचकपूरकवर्जिते ॥ ३ ॥

प्राणायाम जो कहा शुद्ध तो केवल कुंभकही है, अन्य प्रकार नाडीशोधनार्थ हैं रेचकपूरकरहित केवल कुंभकके सिद्ध होजानेमें ॥ ३ ॥

न तस्य दुर्लभं किंचिन्निषु लोकेषु विद्यते ।

शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥ ४ ॥

योगीको तीनहूँ लोकमें कुछभी दुर्लभ नहींहै जब केवल कुंभकके सामर्थ्य होनेसे यथेच्छ (असंख्य) वायु धारण करे ॥ ४ ॥

राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।

कुम्भकात्कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ॥ ५ ॥

इस विधिसे निस्सदेह राजयोगपद प्राप्त होताहै कुंभकके अभ्याससे आधारशक्ति (कुंडलिनी) बोध होताहै इससे निद्रा भालरयादि मिटतेहैं ॥ ५ ॥

अनर्गला सुषुम्णा च हठसिद्धिश्च जायते ।

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।

न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥ ६ ॥

और सुषुम्णाके कफादिमल दूर होनेहैं तब हठसिद्धि (मोक्ष) होताहै, हठयोगविना राजयोगसिद्धि राजयोगविना हठयोगसिद्धि नहींहोती इसलिये दोनहूँका अभ्यास करना ॥ ६ ॥

कुंभकसे प्राण सरोधके अंत्यमें चित्तको आश्रयरहित करे
इस प्रकारके अभ्यासयोगकरके राजयोगपदको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता ।

नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ॥

आरोग्यता बिन्दुजयोमिदीपनं ।

नाडीविशुद्धिर्हठयोगलक्षणम् ॥ ८ ॥

हठयोगसिद्धि जब होती है तो देहमें कृशता, मुखमें प्रसन्नता,
नादकी प्रकटता, नेत्रोंकी निर्मलता, नीरोगिता, धातुका जय,
उदरमें जठराग्निकी वृद्धि, नाडियोंकी शुद्धि ये लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् ।

यत्प्रत्याहारं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ २२ ॥

अब प्रत्याहार कहने हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द ये पांच
विषय हैं इनमें चक्षु, जिह्वा, घ्राण, त्वक्, कर्ण, इन पांच
ज्ञानेन्द्रियोंके कर्म होते हैं अर्थात् उक्त ज्ञानेन्द्रियों उक्त विषय-
क्रमसे हैं ग्रासन-प्राणायाम सिद्ध करके जिस इंद्रियका जो
विषय है उसे दूरसे समीप भावना कर क्रमशः शनैः
शनैः त्याग करना अर्थात् इंद्रियसे उसके विषयका अनुभव-
करके फेर इंद्रियोंको विषयसे अलग करना प्रत्याहार कहा-
ना है ॥ २२ ॥

यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्यभाम् ।

तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा ॥ २३ ॥

दिनके प्रातः, मध्याह्न, सायं ये तीन भागसे तीन काल

तेहै. जैसे (तीसरे) सायंकालमें सूर्य अपनी (प्रभा) कान्तिको क्रमशः हरण करताहै ऐसेही योगीजी तीसरे अंग (आसन १ प्राणायाम २ प्रत्याहार ३) प्रत्याहारमें मानसविकार (विषय) में मनको अभिनिवेशको हरण करना अर्थात् विषयसंबंधसे चित्तको छुटाना ॥ २३ ॥

अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः संकोचयेद्ध्रुवम् ।

योगी प्रत्याहरद्देवामिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥ २४ ॥

जैसे कूर्म (कछुवा) अपने शिरपैरआदि अंगोंको संकोचन कर अपनेही भीतर छिपायदेताहै. अंगतो उसीमें रहतेहैं परंतु न द्रुपेके तुल्य होजानेहैं ऐसेही योगीजी इंद्रियोंको विषयोंसे विमुख कर आत्मामें उनकी वृत्तियोंको थामलेना अर्थात् इंद्रियोंको उनके विषयोंमें आसक्त न होनेदेना विषयोंसे तृप्त जैसा मानकर इंद्रियोंको अपने भीतर अंतरात्मामें आसक्त करना ॥ २४ ॥

यं यं शृणोति कर्णाभ्यामप्रियं प्रियमेव वा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २५ ॥

अगन्धमथवा गन्धं यं यं जिघ्रति नासिका ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २६ ॥

अमेध्यमथवा मेध्यं यं यं पश्यति चक्षुषा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २७ ॥

अस्पृश्यमथवा स्पृश्यं यं यं स्पृशति चर्मणा ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २८ ॥

लवण्यमलवण्यं वा यं यं रसति जिह्वया ।

तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २९ ॥

कर्णसे मधुर वा कठोर जैसे शब्दोंको सुनताहै ऐसे मनभी कर्णद्वारा शब्दमें आसक्त होताहै. योगिजन उक्त शब्दोंकोभी य-हभी आत्माही है, समझ वह मतमें निश्चय कर मनको उक्त शब्द-विषसे प्रत्याग्रहण करे अर्थात् शब्दको विषय मानके जो मनमें ससंभ्रम शब्द सुननेका भ्रम होताहै उस भ्रमसे मनको उसे मिथ्या (विनाशी) जानकर मनको उससे हटावै जैसे (रज्जु) रस्तीमें सर्पका एवं स्थाणु वृक्ष प्रस्तरादियोंमें मनुष्य भूतादि भ्रांति होतीहै. नैसेही अखंडानंदस्वरूप आत्मचैतन्यमें संसार यद्वा देह है कहकर बुद्धि भ्रांति करके कल्पना करतीहै वस्तुतः आ-त्मतत्त्वातिरिक्त कुछभी नहींहैं. इसकारण संपूर्णजगत् आत्म-स्वरूप हैं. ऐसेही शब्दादि उक्त विषयोंकोभी आत्माही है भा-वनापूर्वक निश्चय करके बाहर भीतर अद्वैतानंदस्वरूप आत्मा-से अन्य कोई नहींहै ऐसी धारणा स्थिर करके शब्दादि विष-योंको चलायमान क्रुयेमेंभी उन्हें आत्मा माने विषय न माने नासिकासे सुगंध वा दुर्गंध जो सूंघताहै उसे आत्माही है निश्चय करके नासिकाकी वृत्ति जो गंधद्वारा मनको लुप्ताय भ्रममें डालतीहै उसे हटावै नेत्रेन्द्रियसे जो जो पवित्र वा अपवित्र पदार्थ देखताहै उन्हेंभी आत्माही है निश्चयकर रूपविषयसे मिथ्याभ्रम छोड़के नेत्रेन्द्रियवृत्तिको उक्त विषयसे हटावै त्वानिन्द्रियसे मृदु वा कठोर तप्त वा शीतआदि जिस २ पदार्थको स्पर्श करताहै

भी आत्माही है भावना निश्चयकर त्वगिन्द्रियवृत्ति जो स्पर्शसुखमें मनको लुभाती है उसको हटावे जिह्वासे सलोना, आनोना, मिष्ट, कटुक आदि जिन २२ सोंको चखता है उन्हें आत्माही समझकर जिह्वाकी वृत्तिको हटावे इसप्रकार योगी प्रत्याहारके अभ्यास करके पंचिन्द्रियवृत्तियोंको अपने २ विषयोंसे हटाय आत्मतत्त्वमें स्थिर करना जब प्रत्याहार सिद्ध होजाता है तो योगी कानोंसे सुनें मधुरशब्दको तुल्य मानता है कोईभी इसके चित्तको अपने ओर नहीं लेजायसकते, ऐसेही नेत्रोंसे देवता वा पिशाच, मनुष्य वा कुत्ता, ब्राह्मण वा चांडाल, गौना गदहा इत्यादि सभी-कों तुल्य देखता है, नासिकासे कस्तूरिवादि सुगंधी वा पुरीषादि दुर्गंधियोंसे तुल्य सुख मानता है त्वचासे अग्नि वा जल षोडशीस्त्रीकुच वा कृपाण (आरे) की धारा आदियोंके स्पर्शसे तुल्य सुख मानता है और जिह्वासे मीठा वा कड़वा, तप्त वा शीत, तीक्ष्ण (मिर्च) वा, दुग्ध, मिट्टी, रेत, गोबर वा हलुया, पूड़ी आदियोंको तुल्य स्वादिष्ट मानता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

चन्द्रामृतमयीं धारां प्रत्याहरति भास्करः ।

यत्प्रत्याहारणं तस्याः प्रत्याहारः स उच्यते ॥ ३० ॥

प्रत्याहारके विधि कहनेउपरांत केवल हठयोगहीसेभी प्रत्याहारकी विधि कहतेहैं कि, षोडशदल कमलकर्णिकस्थित चंद्राव-
से जो अमृतधारा गिरती है उसे नाभिकमलस्थित सूर्य्य घ्रासकर लेता है, तो उक्त धाराको विपरीतकरिणीमुद्रा करके सूर्यसे हटाय अपने मुखमें पारे, इसे प्रत्याहार कहतेहैं ॥ ३० ॥

एका स्त्री भुज्यते द्वाभ्यामांगता चन्द्रमण्डलात् ।

तृतीयो यः पुनस्ताभ्यां स भवेदजरामरः ॥ ३१ ॥

एका स्त्री पदसे कंठस्थानगत चंद्रमासे निकसी अमृतधारा-
का बोधन है (द्वाभ्यां) - पदसे सूर्यचंद्रमाका बोध है तृतीय
पदसे आप (योगी) है उक्त अमृतधारा कंठ एवं नाभिगत च-
ंद्रसूर्यसे भोग करती है इसको तीसरा (आप) स्वयं विपरीत-
करणीमुद्रा करके उक्त चंद्रसूर्यसे घचायकर भोग करे तो
अजरामर होता है ॥ ३१ ॥

नाभिदेशे वसत्येको भास्करो दहनात्मकः ।

अमृतात्मा स्थितो नित्यं तालुमूले च चन्द्रमाः ॥ ३२ ॥

अभिमथ एक सूर्य नाभिमें निवास करता है अमृतात्मक
चंद्रमा विशुद्धचक्रमें रहता है ॥ ३२ ॥

वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रो ग्रसत्यूर्ध्वमुखो रविः ।

ज्ञातव्या करणी तत्र यया पीयूषमाप्यते ॥ ३३ ॥

विशुद्धचक्रमें रहकर अधोमुख चंद्रमा अमृतधारा वर्षाता है
उस धाराको नाभिस्थित ऊर्ध्वमुख सूर्य पीलेता है योगीकरके
उक्त सूर्यको वंचनकर उक्त अमृतधाराको अपने मुखमें प्राप्त
किया जाता है उसे विपरीतकरणी जानना ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्व नाभिरधस्तालुर्ध्वं भानुरधः शशी ।

करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ ३४ ॥

जो नाभिगत सूर्यको ऊपर (तालु) विशुद्धगत चंद्रमाको
नीचे करे यह विपरीतकरणी गुरुमुखहसि जानी जाती है,

लिखनेसे नहीं किंतु सुबोध योगियोंको इतना औरभी स्मरण करातेहैं कि यह मुद्रा प्राणायाम योग एवं खेचरीमुद्रासाधनके उपरांत इन्हीसे सुगम होजातीहै ॥ ३४ ॥

त्रिधा बद्धो वृषो यत्र रोरवीति महास्वनः ।

अनाहतं च तच्चक्रं हृदये योगिनो विदुः ॥ ३५ ॥

तीस फेरा रस्तिपासे बँधा वृषभ जैसे पराधीन होकर शब्द करताहै ऐसेही अनाहतचक्रमें सत्त्व-रज तमोगुणस्वरूपमाया-विषै प्रतिबिंबित होरहा जीव परा-पश्यति-मध्यमाविषै प्रतिबिंबित होरहा जीव परा-पश्यति-मध्यमाके क्रमसे हृदयमध्यमें ना दसहित होकर निरंतर शब्द करताहै अनाहतचक्रको हृदयमें योगिजन जानतेहैं ॥ ३५ ॥

अनाहतमतिक्रम्य चाक्रम्य मणिपूरकम् ।

प्राप्ते प्राणे महापद्मं योगी स्वममृतायते ॥ ३६ ॥

खेचरीमुद्राकरके अमृतपानको सूचित करतेहैं कि प्राणापानवायुको एकत्व कर मणिपूर अनाहतचक्रोंको उल्लंघन करके महापद्म (ब्रह्मस्थान) को प्राप्त करके योगी अमृतमय शरीर उक्तामृतपानसे होजाताहै ॥ ३६ ॥

ऊर्ध्वं षोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तं दृष्ट्वा-

दूर्ध्वास्यो रसनां निधाय विधिवच्छक्तिं परां चिन्तयेत् ।

तत्कल्लोलकलाजलं सुविमलं जिह्वाकुलं यः पिवे-

त्रिदोषः स मृणालकोमलवपुर्योगी चिरं जीवति ॥ ३७ ॥

उक्त प्रकारकरके ब्रह्मस्थानपर्यंत प्राणवायुको पूर्णकर

जो योगी शिरमें रहते सहस्रदल कमलसे विशुद्धचक्रमें गिरती
वेला प्राणवायुको ऊपर चढ़ाय नासिका ऊर्ध्वविवरमें प्राप्त
करे ऊर्ध्व विवरमें जिह्वा प्रवेश कर अपना मुखभी ऊपरको
करके सहस्रदलकमलमें प्राणवायुसहित प्राप्तहुई कुंडलिनीका
ध्यान करता कुंडलिनीका सहस्रदलमें प्रवेश होतेही जो अमृ-
ताकार तरंग निकलताहै उसका लेशभूत अतिनिर्मल जिह्वाके
मथनसे निकलेहुये अमृतको पान करे वह योगी अतिसुकुमार
शरीर पायके समस्त रोगदुःखोंसे रहित होकर बहुतकालपर्यंत
जीवित रहताहै ॥ ३७ ॥

काकचक्षुवदास्येन शीतलं सलिलं पिबेत् ।

प्राणापानविधानेन योगी भवति निर्जरः ॥ ३८ ॥

अपानवायुको उठाय अपानवायुके साथ ऐक्य करनेवाले
प्रकारसे काक (कौवे) कासा चौंच मुखकर शीतल सलिल
(बाह्यवायु) को जो योगी पूरक (पूर्ण) करताहै वह वृद्धाव-
स्थासे रहित होताहै अर्थात् सर्वदा युवाही रहताहै ॥ ३८ ।

रसना तालुमूलेन यः प्राणमनिलं पिबेत् ।

अब्दाद्धेन भवेत्तस्य सर्वरोगस्य संक्षयः ॥ ३९ ॥

जिह्वाके सहाय करके तालुमूलसे जो विवर (छिद्र) हैं इसक-
रके जो योगी प्राणवायुको पूर्ण (पूरित) करताहै उसके छः
महिनेक अभ्यासमें समस्त रोगोंका नाश होताहै ॥ ३९ ॥

विशुद्धे पञ्चमे चक्रे ध्यात्वासौ सकलामृतम् ।

उन्मार्गेण हृतं याति वञ्चयित्वा मुखं रवेः ॥ ४० ॥

पांचवां विशुद्धचक्र (जो कंठमें रहताहै) में चंद्रकलामृत-
का ध्यानकरके क्रमसे ऊपरको हरण करताहुवा सूर्यके मुख-
को वंचनकर योगीके मुखमें उक्त चंद्रकलामृत पड़ताहै इसप्र-
कार जिह्वाद्वारा उदरमें प्राप्त होकर योगीके जरा, रोगादियोंको
हरलेताहै ॥ ४० ॥

विशुद्धेन स्मृती हंसो नैर्मल्यं शुद्धिरुच्यते ।

अतः कण्ठे विशुद्धाख्यं चक्रं चक्रविदो विदुः ॥ ४१ ॥

‘वि’ शब्द हंसका और ‘शुद्ध’ शब्द निर्मलका बोधक है
कंठमें अत्यंत निर्मल विशुद्धनामा चक्र है. यह सर्वोत्कृष्ट है
चक्रोंके तत्त्व जाननेवाले योगी जानतेहै ॥ ४१ ॥

अमृतं कन्दरे कृत्वा नासान्तसुपिरे क्रमात् ।

स्वयमुच्चारितं याति वर्जयित्वा मुखं रवेः ॥ ४२ ॥

विशुद्धचक्रस्थ चंद्रकलामृतको अषानवायुसहित प्राणवा-
युको ऊपर चलायके लंबिका ऊर्ध्वविवरमें प्रवेश (पूर्ण) कर
क्रमसे नासिकके ऊपर विवरमें पहुँचानेसे नाभिसूर्यके मुख
(जो अमृतको भस्म करताहै) को वंचन (छलन) करके उ-
क्तामृत उदरमें अन्नके समान पहुँचताहै ॥ ४२ ॥

नासां ऊर्ध्वविदरमें पूरित करे तब सर्वद्वारोंको रोकके (गगन) आज्ञाचक्रमें प्राणापानवायुसहित पूरण करके ऊर्ध्वमुख होकर भूमि उत्तान लेटकर पैरोंकोभी उत्तान करके जितेंद्रिय होकर उक्तामृतपान करना जो योगी निरंतर इस विधिको करताहै उसका क्षय (मृत्यु) नहींहोती ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वं जिह्वां स्थिरीकृत्य सोमपानं करोति यः ।

मासार्द्धेन न सन्देहो मृत्युं जयति योगवित् ॥ ४४ ॥

जिह्वाको ऊपर लंबि करके ऊपर स्थिर करके जो योगी अमृतपान करताहै उस अभ्यासीको एकही पक्ष (१५ दिन) में मृत्यु जीतनेकी सामर्थ्य होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ ४४ ॥

बद्धं मूलविलं येन तेन विघ्नो विदारितः ।

अजरामरमाप्नोति यथा पञ्चमुखो हरः ॥ ४५ ॥

जिस योगीने (मूलबंध) मूलद्वार रोका उसने जरामरणादि विघ्नका नाश करलिया, इस हेतु जरामरणयुक्त देहमें आत्मभावको छोडकर जरामरणरहित शुद्ध आत्मभावको प्राप्त होताहै जैसे पंचवक्त्र सदाशिव देहाहंकार जरामरणादिरहित विराजमान हैं ऐसेही उक्त अभ्यासीभी होताहै ॥ ४५ ॥

संपीड्य रसनाग्रेण राजदन्तविलं महत् ।

ध्यात्वामृतमयीं देवीं पण्मांसन कविर्भवेत् ॥ ४६ ॥

जो जिह्वाग्रसे गजदंतके बिल (रंध्र) को अचेतन (पीडन) कर अमृतमयी वागीश्वरी देवीके ध्यानका अभ्यास करताहै

अभ्यास सिद्ध होनेपर छैः महीनेमें विचित्र कवितासामर्थ्य क-
वि होजाताहै ॥ ४६ ॥

सर्वाधाराणि वध्नाति तदूर्ध्वं धारितं महत् ।

न मुञ्चत्यमृतं कोपि स पन्थाः पञ्च धारणाः ॥४७॥

जिह्वाग्रसे पीडनकर राजदंतके छिद्रको रोकनेसे समस्त
नाडियोंके मुख रुक जातेहैं. ऊपरके रुकनेसे अमृतधारा गिर-
के अन्यत्र नहीं गिरसकती पंच धारणाके अभ्यासी योगीको-
भी जैसे इसीमें चंद्रमासे गिरसरित अमृतका हरण भ्रत्याहार
कहाहै तैसेही अमृतको लंबिकाके ऊर्ध्वविवरमें धारणा कर-
ना यह धारणा होतीहै ॥ ४७ ॥

चुम्बन्ती यदि लम्बिकाग्रमनिशं जिह्वा रसस्यन्दिनी।

सक्षारं कटुकांलदुग्धसदृशं मध्याज्यतुल्यं तथा ॥

व्याधीनां हरणं जरान्तकरणं शास्त्राङ्गमोद्गीरणं ।

तस्य स्यादमरत्वमष्टगुणितं सिद्धाङ्गनाकर्षणम् ४८

जिह्वासे लंबिकाके निरंतर चुंबनाभ्यास करनेवाले योगीको
कभी लयण, कभी चरपरा, कभी खट्टा, कभी दूधसा, कभी सह-
दकासा, कभी रघाकासा स्वाद जिह्वामें अनुभव होतेहैं ये लक्षण
जब अभ्यास सिद्ध हुयेमें होनेलगतेहैं तब योगीके व्याधि (रोग)
नाश होतेहैं. वृद्धावस्थाका निवारण होताहै शस्त्रके व्याख्यान
करनेके सामर्थ्य बिनापटेभी होतीहै अमृतमयशरीर होकर अ-
ष्ट सिद्धि मिलतीहैं स्मरणमा ॥ ४८ ॥, नागादिकन्याओंके
आकर्षण करने

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनो द्वित्रिवत्सरात् ।

ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतोप्यणिमादिगुणोदयः ॥ ४९ ॥

उक्त प्रत्याहारका फल कहतेहैं कि उक्त प्रकारसे अमृतसे परिपूर्ण जब देह योगीका होजाताहै तो २।३ वर्ष अभ्याससे वीर्य (रेत) ऊपरको चढजाताहै ऊर्ध्वरेता होकर कदाचित्-
भो वीर्य्य स्वालित नहींहोता एवं अणिमादि सिद्धि उदय हो-
तोहैं ॥ ४९ ॥

इन्धनानि यथा वह्निस्तैलवार्तिं च दीपकः ।

तथा सोमकलापूर्णदेहं देही न मुञ्चति ॥ ५० ॥

जैसे अग्नि शुष्ककाष्ठ एवं दीपक तैलवर्तिको समग्र भस्म
कियेविना नहीं छोडता तैसेही जीवात्माभी चंद्रकलामृतसे पू-
र्णहुये योगीके शरीरको कदापि नहींछोडना ॥ ५० ॥

नित्यं सोमकलापूर्णशरीरं यस्य योगिनः ।

तक्षकेणापि दष्टस्य विषं तस्य न सर्पति ॥ ५१ ॥

जिस योगीका शरीर नित्य सोमकलामृतसे पूर्ण रहताहै
वसे तक्षकनागभी डसे (काटे) तोभी शरीरमें विष नहीं फैल-
ता ॥ ५१ ॥

इति प्रत्याहारप्रकरणम्.

‘अब ९ श्लोकसे धरणाका विस्तार कहतेहैं’—

आसनेन संमायुक्तः प्राणायामेन संयुतः ।

प्रत्याहारेण संपन्नो धारणां च समभ्यसेत् ॥ ५२ ॥

‘आसनका साधन प्राणायामका साधन प्रत्याहारका अभ्या-

संस्थिर करके इंद्रियवृत्तियोंको रोकनेके सामर्थ्य हुयेमें धारणा-
का अभ्यास करना ॥ ५२ ॥

हृदये पञ्च भूतानां धारणा च पृथक् पृथक् ।

मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते ॥ ५३ ॥

हृदयमें मन एवं प्राणवायुको निश्चल करके पृथ्वी, जल, ते-
ज, वायु, आकाशसंज्ञक पंच भूतोंको पृथक् पृथक् संधार क-
रना धारणा कहातीहै ॥ ५३ ॥

या पृथ्वी हरितालहेमरुचिरा पीता लकारान्विता
संयुक्ता कमलासनेन हि चतुष्कोणा हृदि स्थायिनी ।
प्राणांस्तत्र विलीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वितान्धारये-

देपा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुय्याद्भुवो धारणा ५४

पहिले पृथ्वीधारणा कहतेहैं कि जो पृथ्वी हरिताल यद्वा
सुवर्णसमान रमणीयवर्ण अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मासहित चतुष्कोणा-
कार मध्यमें (लं) बीजयुक्त है इस (लं) पृथ्वीतत्त्वको हृद-
यमें ध्यान करके भावना करना उक्त भूमंडलमें आपसी लीन
होना चित्तसहित प्राणको लीन करके पांच (५) घटीपर्यंत
स्तंभन करनेवाली धारणा होतीहै इस धारणाके सर्वदा अभ्यास
करनेसे पृथ्वीतत्त्व अपने वशवर्ती होताहै ॥ ५४ ॥

अर्द्धेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं कण्ठेऽम्बुतत्त्वं स्थितं ।

यत्पीयूष-व-कारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना ।

प्राणं तत्र विलीय पञ्च घटिका चित्तान्वितं धारये-

देपा दुःसहकालकृद्दहनी स्याद्गारुणी धारणा ॥ ५५ ॥

वारुणी (जल) धारणा कहतेहैं कि अर्द्धचंद्राकार कुंद पुष्पसमान श्वेतवर्ण अमृतरूप (वै) बीजमध्यसहित अधिष्ठातृ-देवता विष्णुसहित जलतत्त्वको विशुद्धचक्रमें ध्यान करना उक्त जलतत्त्वमें आपत्ती लीन होकर चित्तसहित प्राणको लीन कराय पांच घटीपर्यंत धारणा करना यह जलस्तंभन करनेवाली वारुणीधारणा है इसके सर्वदा अभ्यास करनेसे कालकूटविषकामी भस्म होजाताहै विषका असर शरीरमें नहींहोता ॥ ५५ ॥

यत्तालुस्थितमिन्द्रगोपसदृशं तत्त्वं त्रिकोणानलं
तेजो रेफयुतं प्रवालरुचिरं रुद्रेण सत्सद्गतम् ।

प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-
देवा वह्निर्जयं सदा वितनुते वैश्वानरी धारणा ॥ ५६ ॥

आग्नेयी धारणा कहतेहैं कि (इन्द्रगोप) वीरघहूटी कीडैके सदृश रक्तवर्ण त्रिकोणाकार (प्रवाल) मुंगासमान रमणीय तेजोरूप (रे) बीजमध्य शोभित अधिष्ठातृदेवता रुद्रसहित आग्नेयतत्त्वको तालुस्थानमें भावनाकरके उक्त अमृततत्त्वमें आपत्ती लीन होकर चित्तसहित प्राणको लीन कराय पांच घटीपर्यंत तन्मय होना वैश्वानरी धारणा होताहै इसके सर्वदा सेवन करनेसे योगी अग्निको जीवनेवाला होताहै अग्नि उसको दाह नहींकरता ॥ ५६ ॥

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं स्यूतं भुवोरन्तरे

तत्त्वं वायुमयं थकारसहितं तत्रेश्वरो देवता ।

प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-

देवा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा ५७

वायवी धारणा कहतेहैं कि वर्तुलाकार कज्जलके पुंजसमान अतिनीलवर्णा (यँ) बीजसहित अधिष्ठातृदेवता, ईश्वरसहित वायुतत्त्वको मृगध्यमें ध्यानवर उक्त वायुतत्त्वमें आपभी लीन हो या चित्तसहित प्राणको लीन कर पांच घटीपर्यंत स्थिर रखना यह वायुतत्त्वकी धारणा है इस धारणाके नित्य अभ्यास करनेसे आकाशमें गति होतीहै ॥ ५७ ॥

आकाशं सुविशुद्धयारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं

तन्नादेन सदा शिवेन सहितं तत्त्वं इकारान्वितम् ।

प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकं चित्तान्वितं धारये-

देवा मोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ५८

नभोधारणा कहतेहैं कि वर्तुलाकार निर्मलजलसमान वर्ण (हँ) बीजसहित अधिष्ठातृदेवता सदाशिवसहित आकाशतत्त्वको ब्रह्मरन्ध्रमें ध्यान करना इस तत्त्वमें आपभी लीन हो चित्तसहित प्राणको लीन कर पांच घटीपर्यंत स्थिर रखना यह नभोधारणा मोक्षरूपी द्वारके खोलनेमें चतुर है इसके नित्य अभ्यास करनेसे मोक्षद्वार खुल जानाहै ॥ ५८ ॥

स्तम्भिनी द्राविणी चैव दक्षिणी भ्रामिणी तथा ।

शोपिणी च भवत्येषा भूतानां पञ्च धारणाः ॥५९॥

पृथ्वीधारणाके अभ्यास दृढ ह्रुयमें जलपवनादि स्तम्भनसामर्थ्य होतीहै वारुणीधारणाके अभ्यास दृढ ह्रुयमें समस्तद्रव्यमात्रको (द्रव) जलसमान करनेकी सामर्थ्य होतीहै एवं आग्नेयी-

बिना अभिही वस्तुमात्रको जलानेकी सामर्थ्य होती है वायु-
धारणासे वस्तुमात्र किंवा समस्त जगत् को घुमानेकी सामर्थ्य
होती है नभोधारणासे सर्व शोषण सामर्थ्य होती है ये पंच धार-
णाओंके साधारण त्रिया हैं ॥ ५९ ॥

कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पञ्च दुर्लभाः ।

विज्ञाय सततं योगी सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

कर्म (अनुष्ठान) से मनके चिंतनसे वचन शास्त्राज्ञाके प्रमा-
ण माननेसे निरूपण कर पांचों धारणाओंको स्थिराभ्यास कर-
ता है वह समस्त दुःखोंसे मुक्त होता है ॥ ६० ॥

इति धारणाः

स्मित्येव सर्वचिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते ।

याचिते निर्मला चिन्ता तद्धि ध्यानं प्रचक्षते ॥ ६१ ॥

‘स्मृ’ यह धातु चिन्तासामान्यवाचक है सो चिन्तमें यो-
गशास्त्रोक्तप्रकारसे निर्मलांतरकरके आत्मतत्त्वका स्मरण कर-
ना ध्यान कहाता है ॥ ६१ ॥

द्विविधं भवति ध्यानं सकलं निष्कलं तथा ।

सकलं चर्याभेदेन निष्कलं निर्गुणं भवेत् ॥ ६२ ॥

यह ध्यान सगुण, निर्गुण भेदसे दो प्रकार है जैसे श्यामवर्ण
चतुर्बाहु वनमाला-मुकुट-कुंडल-पीतांबरधारी विष्णुका ध्यान
करना सगुणध्यान है ॥ ६२ ॥

अन्तश्चेतो वहिश्चक्षुरधः स्थाप्य सुप्तासनः ।

कुण्डलिन्या समायुक्तं ध्यात्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ६३ ॥

एकांत पवित्रस्थानमें बैठके पद्मासन वा स्वस्तिकासन बांध शरीर सरल बनाय आधारादिचक्रोंमें अंतःकरण (मन) लगाय नासाग्रदृष्टि देकर निश्चल एकाग्र होकर कुंडलिनी सहित ध्येयवस्तुका ध्यान करना इससे योगी समस्तपापोंसे निर्मुक्त होताहै यह ध्यानमुद्रा है ॥ ६३ ॥

आधारं प्रथमं चक्रं स्वर्णामं च चतुर्दलम् ।

कुण्डलिन्या समायुक्तं ध्यात्वा मुच्येत किल्बिषैः॥६४॥

योगीजनोंके ध्यान करनेयोग्य वनस्थान है इनमें प्रथम मूलधारचक्र सुवर्णवर्ण चतुर्दल कमल है इसके कर्णिकामें स्वर्णजूलिंगके शिरमें बिंबाकार साठतान वृत्तवेष्टित हो रही कुंडलिनीसहित इस चक्रके ध्यान करनेसे समस्त पापोंसे निर्मुक्त होताहै ॥ ६४ ॥

स्वाधिष्ठाने च पट्पत्रे सन्माणिक्यसमप्रभे ।

नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा योगी सुखी भवेत्॥६५॥

द्वितीय स्वाधिष्ठानचक्र रक्तवर्ण पट्टदलकमलकर्णिकामें सगुण वा निर्गुण ज्योतिःस्वरूप आत्माको नासाग्रदृष्टि करके ध्यान करनेसे योगी आनंदावस्थाको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥

तरुणादित्यसंकाशे चक्रे च मणिपूरके ।

नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा संक्षोभयेज्जगत् ॥६६॥

तृतीय मणिपूरचक्र उदय हेति सूर्य्यमंडलसमान रक्तवर्ण कमलकर्णिकामें सगुण वा निर्गुण ज्योतीरूप आत्माको नासा-

ग्रहष्टिकरके ध्यान करनेसे योगी समस्त जगत्क्षोभ करनेकी सामर्थ्य पाताहै ॥ ६६ ॥

हृदाकाशे स्थितं शम्भुं प्रचण्डरावितेजसम् ।

नासाग्रे दृष्टिमाधाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ६७ ॥

चतुर्थ हृदयरूप आकाश अनाहतचक्रकर्णिकामें रहते प्रचंडतेजवान् सूर्य्यसमान तेजस्वी बाणलिंग (शिव) का ध्यान नासाग्रदृष्टि देकर करनेसे योगी ब्रह्ममय होताहै ॥ ६७ ॥

विद्युत्प्रभे च हृत्पद्मे प्राणायामविभेदतः ।

नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ६८ ॥

ऐसेही विद्युत् (बिजुरी) समान प्रभायुक्त हृदयकमल कर्णिकामें उक्त प्रकारसे नासाग्रदृष्टि देकर सगुण वा निर्गुण ज्योतिःस्वरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी ब्रह्ममय (जीवन्मुक्त) होताहै ॥ ६८ ॥

सततं घण्टिकामध्ये विशुद्धे दीपकप्रभे ।

नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ६९ ॥

कंठस्थानमें दीपज्योतिसमान कांतिमान् विशुद्धचक्रमें नासाग्रदृष्टिकरके सगुण निर्गुण वा ज्योतिःस्वरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी अमर (मरणरहित) होताहै ॥ ६९ ॥

भ्रुवोरन्तर्गतं देवं सन्माणिक्यशिखोपमम् ।

नासाग्रदृष्टिरात्मानं ध्यात्वानन्दमयो भवेत् ॥ ७० ॥

भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रमें माणिक्यशिक्षा (चूनीकी सूक्ष्म चमक)

समान रक्तवर्ण आत्माको नासाग्रदृष्टि देकर ध्यान करनेसे योगी समस्त दुःखरहित आनंदमय होताहै ॥ ७० ॥

ध्यायन्नीलनिभं नित्यं भ्रूमध्ये परमेश्वरम् ।

आत्मानं विजितप्राणो योगी योगमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥

आज्ञाचक्रमें नीलवर्ण शिवपरमात्माका ध्यान प्राणायाम प्रकारकरके करनेसे 'योगी जीवात्मा परमात्माके ऐक्यको पाताहै ॥ ७१ ॥

निर्गुणं च शिवं शान्त गगने विश्वतोमुखम् ।

नासाग्रदृष्टिरेकाकी ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ७२ ॥

आज्ञाचक्रमें निर्गुणरूप, शांत, विश्वव्यापक, शिवके नासाग्रदृष्टि देकर ध्यान करनेसे जीवत्तावको देनेवाले गुणधर्मसे रहित होताहै अर्थात् जीवभावका रमरणमात्रभी नहींरहता ७२ ॥

आकाशे यत्र शब्दः स्यात्तदाज्ञाचक्रमुच्यते ।

तत्रात्मानं शिवं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

जिस तत्त्वमें नाद प्रकट होताहै ऐसा आकाशतत्त्वस्थान मन्त्रा स्थान है सोही भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र कहाताहै इसमें रहते सदाशिवरूप आत्माके ध्यान करनेसे योगी कैवल्य मुक्ति पाताहै ॥ ७३ ॥

निर्मलं गगनाकारं मरीचिजलसन्निभम् ।

आत्मानं सर्वगं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात् ७४

आज्ञाचक्र ऊपर शून्यस्थानमें करनेयोग्य ध्यान वहनहै कि, स्वरूपको आच्छादित करनेवाला, मलिनसंशोधन रहित,

आकाशसमान, एकाकार, सर्वव्यापक, प्रकाशमान तेजःस्वरूपके
ध्यान करनेसे योगी मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

गुदं मेढ्रश्च नाभिश्च हृत्पद्मं च तदूर्ध्वतः ।

घण्टिका लम्बिकास्थानं धूमध्ये च नभोविलम् ७५

ध्यानमुक्त नव (९) स्थानोंको पुनः स्मरण करते हैं कि, गुदा
(मूलाधार) १ मेढ्र (स्वाधिष्ठान) २ नाभि (मणिपूर) ३
हृत्पद्म (अनाहत) ४ तदूर्ध्व (विशुद्ध) ५ घण्टिकाका मूल ६
लम्बिकाका स्थान ७ आज्ञाचक्र ८ इसके ऊपरका शून्यस्था-
न ९ ये नव ध्यानयोग्य स्थान हैं ॥ ७५ ॥

कथितानि नवैतानि ध्यानस्थानानि योगिभिः ।

उपाधितत्त्वमुक्तानि कुर्वन्त्यष्टगुणोदयम् ॥ ७६ ॥

योगिपौने उक्त नव (९) स्थान ध्यानोपयोगी कहे हैं इन्हें उ-
पाधि अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच तत्त्वोंक-
रके सहित करनेसे अग्निमादि अष्टसिद्धियोंका उदय होता है ७६

एषु ब्रह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरनुत्तमम् ।

ध्यात्वा ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम् ७७

उक्त नव (९) स्थानोंमें सर्वोत्कृष्ट शिव अनाहत आज्ञाच-
क्रोंमें उक्त प्रकारसे साकार सगुणस्वरूपको अथवा निराकार
निर्गुणब्रह्मको भावना करके उक्त स्थानोंमें ध्यान करनेसे यो-
गी संसारसे मुक्त होकर पुनर्जन्ममरणरूप संतापसे छुटता है यह
श्रीगोरक्षनाथ प्रतिज्ञा करके कहे हैं इसमें संशय न मानना ७७
नाभौ संयम्य चित्तं पवनगतिमधो रोधयत्संप्रयत्ना-

(१०२) , गोरक्षपद्धति-

दाकुञ्ज्यापानमूलं हुतवहसदृशं तन्तुवत्सूक्ष्मरूपम् ।
तद्वद्वा हृत्सरोजे तदनु दलणके तालके ब्रह्मरन्ध्रे
भित्त्वा ते यान्ति शून्यं प्रविशति गगने यत्र देवो महेशः॥

चित्त (अतःकरण) को मणिपूरचक्रमें स्थिर करके अ-
पानद्वारको बड़े प्रयत्नसे सकोच विकाश कर अपानवायु-
को अधोगतिको रोकके ऊपरको उठाय मन एवं प्राणवयुसे
ऐक्य करे सूत्रके समान सूक्ष्म अग्निरूपमान देदीप्यमान ज्योतिः-
स्वरूपको उक्त ऐक्यविषये चिंतन करनेसे उक्त ज्योति नाभि-
चक्रको वेधनकर हृदयकमलमें पहुँचताहै पुनः अस्यास-
सिद्ध हो तो हृदयकमलको वेधकर ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचताहै इसी
विधिसे योगिपौक शरीरत्यागसमयमें वही ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म-
रन्ध्रको भेदनकर परमशिव शून्याकार चिदाकाशमें प्रवेश कर
परब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ७८ ॥

नाभौ शुभ्रारविन्दं तदुपरि विमलं मण्डलं चण्डरश्मेः ।
संसारस्यैकरूपां त्रिभुवनजननीं धर्मदात्रीं नराणाम् ॥
तस्मिन्मध्ये त्रिमागे त्रितयतनुधरां छिन्नमस्तां प्रशस्तां ।
तां वन्दे ज्ञानरूपां मरणभयहरां योगिनीज्ञानमुद्राम् ७९

मणिपूरचक्रमें शुक्लवर्ण कमल चिंतनपूर्वक उसके मध्यमें नि-
र्मल सूर्यमंडलका ध्यान करना इस मंडलके मध्यमें सत्त्व-रज-
तम त्रिगुणरूप उपाधिभेदसे तीन प्रकारको प्राप्त होकरहा सुपुष्पा-
नाईके द्वारमें संसारके कारणरूपा त्रैलोक्यके उत्पन्न करनेहारी
जन्ममरणोपाधिग्रस्त मनुष्योंको उपासनामागसे मोक्षरूप परमंघ-

भेदेनेहारी त्रिगुणरूप होरही ज्ञानस्वरूपिणी (जिसकी स्तुति ब्रह्मादिदेवता सनकादि सिद्ध करतेहैं) तथा योगमात्रसे गम्पा, ज्ञानमात्र उपाधिसे होरही छिन्नमस्ता नाडीस्वरूप भासमान हो- रही कुंडलिनीको स्तुति (अभिवादन) करताहूं इसप्रकार योगी छिन्नमस्ता महाविद्यारूप कुंडलिनीकी वंदना करे ॥ ७९ ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।

एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ८०

सहस्रों अश्वमेध सेकड़ों वाजपेयघोड़ोंका फलभी केवल सा- त्विक एक ध्यानावस्थाका सोलहवा अंश (भाग) के समान नहींहै अर्थात् यज्ञादि साधनाओंमेंभी श्रेष्ठ ध्यानयोग है ॥ ८० ॥

इति ध्यानप्रकरणम्.

उपाधिश्च तथा तत्त्वं द्वयमेतदुदाहृतम् ।

उपाधिः प्रोच्यते वर्णस्तत्त्वमात्माभिधीयते ॥ ८१ ॥

अब १५ श्लोकमें समाधिविधि कहतेहैं आत्माके प्र- काश होनेवालेको उपाधि तथा आत्मचैतन्यको तत्त्व कहतेहैं उपाधि और तत्त्व ये दोनहूँ मुख्य विचार्य्य हैं उपाधि प्रणवरू- प वर्ण ॐ है तत्त्व आत्मा कहाताहै ॥ ८१ ॥

उपाधेरन्यथा ज्ञानतत्त्वसंस्थितिरन्यथा ।

समस्तोपाधिविध्वंसी सदाभ्यासेन जायते ॥ ८२ ॥

उपाधिसे यथार्थ वैषयिक अन्यही है अर्थात् विपरीत बो- दक है जैसे स्फटिक तो स्वच्छ श्वेतमात्र है परंतु लाल, पीलो, नीलो आदि रंग (उपाधि) संबंधसे उसी रंगकासा स- मान होताहै तैसेही शरीरमें निर्विकार शुद्ध आत्मा विषयवास-

नाओंके संसर्गसे “अहं सुखी” “अहं दुःखी” इत्यादि भासमान होता है जब अपनी निर्मलबुद्धिसे उपाधि पृथक् माने तब आत्म-स्वरूपका यथार्थज्ञान होता है जैसे रक्तादिरंगमें स्फटिक भी वैसा होता है परंतु बुद्धिसे जो न कि स्फटिक तो शुद्ध ही है परंतु रक्तादि रंगोपाधिविकारसे मिथ्या रंग देखा जाता है तैसेही इंद्रियधर्मोंसे आतमी जीवात्मा यथार्थज्ञानसे भद्वैतानंदस्वरूप है सुखदुःखका इसमें संबंध नहीं है ऐसा ज्ञानयोगाभ्याससे होता है तब योगी उपाधिजाल विनाश करनेमें समर्थ होता है ॥८२॥

शब्दादीनां च तन्मात्रं यावत्कर्णादिषु स्थितम् ।

तावदेवं स्मृतं ध्यानं समाधिः स्यादतः परम् ॥८३॥

ध्यान एवं समाधिका अवस्थाभेद प्रकट करते हैं कि ध्यानावस्थामें स्थिर रहते योगिके कर्णादि इंद्रियोद्विषे शब्दादि विषयोंका सूक्ष्मभागभी जबलों उपलब्धमान होते हैं, तभीलों ध्यानावस्था कहाती है जब आत्मामें पंचेंद्रियवृत्ति लीन होजाय तब आत्मामें अर्थमात्रका ज्ञान रहनेवाली अवस्था समाधि कहाती है ॥ ८३ ॥

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं च पट्टिनाडिभिः ।

दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात् ॥ ८४ ॥

ध्यान-धारणा-समाधिका प्रमाण कहते हैं कि प्राणवायुके व्यापार रोकनेमें पांच घटीपर्यंत धारणा कहाती है ऐसेही ६० घटीसे ध्यान और बारह (१२) अहोरात्रपर्यंत प्राणवायुके व्यापार निरंतर रोकनेमें समाधि कहाती है ॥ ८४ ॥

न गन्धं न रसं रूपं न च स्पर्शं न निःस्वनम् ।

नात्मानं न परस्वञ्च योगी युक्तः समाधिना ॥ ८८ ॥

योगीके समाधिमें रहनेके अवस्था कहतेहैं कि जो योगी समाधिमें एकत्वको प्राप्त होजाताहै तो सर्व इंद्रियगण मनमें लीनताको प्राप्त होकर गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, इन पांच विषयोंको नहींजानता कोही वस्तुमात्र अपना वा पराया कुछ नहींजानता जीवात्मा तथा परमात्माको अलग नहींमानता ए. कही समझताहै इसप्रकार ध्यानमें एकाग्र होनेसे और किसी प्रकार ज्ञान नहींहोता ॥ ८८ ॥

अभेद्यः सर्वशास्त्राणामवध्यः सर्वदेहिनाम् ।

अग्राह्यो मन्त्रयन्त्राणां योगी युक्तः समाधिना ॥ ८९ ॥

जब योगी उक्त विधिसे समाधियुक्त होजाताहै तो समस्त शस्त्रोंसे अभेद्य (न कटनेयोग्य) होताहै (देही) मनुष्य, सिंह, गज, व्याघ्रआदियोंने (अवध्य) नहीं मारजाता (मन्त्र) (यन्त्र) मारणमोहनादि प्रयोग (जादू) भी उसपर नहींचलता ॥ ८९ ॥

वाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा ।

साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना ॥ ९० ॥

जब योगी समाधिमां स्थिर होजाताहै तो उसको जरा (बुढ़ाया) एवं मरण (मृत्यु) पीडन नहीं करसकते अर्थात् अजरामर होजानाहै उसपर कालका वश नहींचलता पापपुण्य हैं हेतु जिसके ऐसे कर्मबधनेंसे लिप्त नहींहोता और कोई उसे

विषयवासनामें नहीं लगायसकता किसीके साधनमें यह नहीं-
आता ॥ ९० ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ ९१ ॥

मितोहारयुक्त व्यवहारमें रहकर जो योगी समस्तकर्मोंमें युक्त
रहताहै और निद्रा, जागरणभी युक्त रखताहै अर्थात् कोई
कामभी अपुक्त (अति) नहींकरता पूर्वोक्त क्रियाओंमें सावधान
रहताहै उसको योग दुःखनाशक कहाताहै ॥ ९१ ॥

निराद्यन्तं निरालम्बं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ।

निराश्रयं निराकारं तत्त्वं जानाति योगवित् ॥ ९२ ॥

जब योगी उक्त विधिमें समाधिमें स्थिर होजाताहै तब प-
रमनस्व जिसका (आद्यत) जन्ममरण नहीं किसीके आलंबन
(निमित्तमें) नहीं मायाआदि किसीके आश्रयमें नहीं द्वैतक-
ल्पनामें नहींहै जन्ममरणादि दुःखमें नहीं ऐसे जीवात्मा पर-
मात्माके ऐक्य होरहे आत्मस्वरूपतत्त्वको जानताहै ॥ ९२ ॥

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत् ।

व्योमविज्ञानमानन्दब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥ ९३ ॥

(निर्मल) कर्मके फल वासनारूप मलसे रहित (निश्चल)
चेष्टारहित (नित्य) परिणामरहित (निष्क्रिय) सर्वव्यापारशून्य
(निर्गुण) सत्त्वादिगुणरहित (महत्) जिसका परिमाण नहीं
क्रियाजाता ऐसे (व्योम) चिदाकाशस्वरूप (विज्ञान) बोधस्वरूप